श्रीहरिनाम चिंतामणि

****

श्रीहरिनाम चिंतामणि

1

प्रबोधिनी कथा

साधारण लोगों के पढ़ने के लिए ये ग्रंथ नहीं है, जिनका श्रीचैतन्यदेव में दृढ़ विश्वास हो गया है तथा जिसकी नामाश्रया भक्ति में श्रद्धा है, वे ही इस ग्रंथ को पढ़ने या सुनने के अधिकारी हैं। साधन भक्ति में जितने भी प्रकार की साधनाएं हैं, उनमें एकमात्र नामाश्रया भक्ति से ही सर्वसिद्धि होती है-- इस प्रकार जिनका विश्वास है , वे ही सर्वोत्तम साधक हैं । श्रीमन महाप्रभु जी किये शिक्षा उनके शिक्षाष्टक में ही मिलती है। श्रीमन महाप्रभु जी ने श्रीहरिदास जी को इस शिक्षा के लिए आचार्य के रूप में वरण किया था ।

प्रमाणिक ग्रंथों के अनुसार हरिदास ठाकुर जी का जन्म मुसलमान कुल के बंगाल के वन नामक ग्राम के निकट बूडन नामक स्थान में हुआ। अति ही अल्प समय मे अपने पूर्व संस्कारों के कारण आपकी नाम भजन में रुचि हो गयी तथा आप अपने घर को छोड़ बेनापोल के वन में कुटिया का निर्माण कर नाम संकीर्तन तथा नाम स्मरण में अपना समय बिताया करते थे। वहां पर कुछ बहिर्मुख व्यक्ति आपके विरुद्ध हो गए इसलिए इस स्थान का त्याग कर आप गंगा किनारे आकर रहने लगे। यहां पर एक दुष्ट स्वभाव व्यक्ति ने आपके पतन के लिए एक वेश्या को आपके सन्मुख भेजा।दुष्ट व्यक्ति ने जिस वेश्या को इनके पतन के लिए भेजा था वही इनके मुख से हरिनाम सुनकर परम् भक्ता हो गयी।वेश्या के भक्ता हो जाने पर बेनापोल की वह कुटिया उस वेश्या को देकर उस स्थान का त्याग कर चले गए।

हरिनाम गाते गाते आप गंगा पार सप्त ग्राम में रहने वाले यदुनंदन आचार्य जी के घर पहुंचे तथा वहीं रहने लगे। आचार्य जी मे साथ आप उस गावँ के जिमिंदार श्री हिरण्य गोवर्धन की सभा मे जाते थे। गोपाल चक्रवर्ती नामक एक ब्रह्म बन्धु के साथ आपका हरिनाम के विषय मे तर्क हुआ। हरिण्य गोवर्धन ने उसे काम से हटा दिया तथा कुछ समय पश्चात उसे कुष्ट रोग हो

गया। उसी समय श्रीगोवर्धन के पुत्र श्रील रघुनाथ दास गोस्वामी जी, जो उस समय छोटी आयु के थे , ने हरिदास जी की कृपा से वैष्णव प्रवृति लाभ की थी। गोपाल चक्रवर्ती के क्लेश को सुनकर इन्होंने उस स्थान का भी त्याग कर दिया तथा फुलिया ग्राम में श्रीअद्वैताचार्य जी के आश्रम के पास गंगा जी के किनारे निर्जन स्थान में कुटिया बनाकर भजन करने लगे। भक्त प्रतिष्ठा का कितना भी त्याग करे परन्तु जन सँग का परित्याग करके कितना भी भजन करे , तो भी भक्ति के प्रभाव से उसकी प्रतिष्ठा को छिपाया नहीं जा सकता।

हरिदास जी द्वारा की जाने वाली भक्ति का प्रचार होते ही मुसलमानों की उनके प्रति ईर्ष्या उतपन्न हो गयी। मुसलमानों के काजी द्वारा उनको विशेष रूप से यातना दी गयी। हरिदास जी सब जीवों पर दया करने में परिपूर्ण हैं तथा उनके दोष न देखते हुए उनको आशीर्वाद देकर अपनी गुफा में लौट आये । इधर कुछ दिन बाद महाप्रभु जी का नवद्वीप में अवतार हुआ , श्रीअद्वैताचार्य के साथ यह भी महाप्रभु जी के चरण आश्रित हुए । उसी दिन से महाप्रभु जी द्वारा नाम आचार्य के रूप में नियुक्त हुए।

ततपश्चात जब महाप्रभु जी पुरी में रहने लगे तब हरिदास ठाकुर जी भी वहीं आ गए।हरिदास जी की लीला अप्रकट के समय महाप्रभु जी ने स्वयम अपने हाथों से उन्हें समाधि दी तथा समारोह के साथ संकीर्तन करके उनका अप्रकट दिवस मनाया।

श्रीमहाप्रभु जी की लीला इस प्रकार है कि उनके जिस भक्त ने भक्ति के जिस क्षेत्र में ऊंचा अधिकार प्राप्त किया , महाप्रभु जी ने उस विषय की अपनी शिक्षा उस भक्त के द्वारा ही जगत में प्रचार करवाई। यही कारण है कि उन्होंने हरिदास ठाकुर जी से हरिनाम के सम्बंध में कुछ प्रश्न करके हरिनाम तत्व भी उनके मुख से प्रकाशित करवाया। श्रीचैतन्य चरितामृत, श्रीचैतन्य भागवत आदि कई ग्रंथो में इसका उल्लेख है। श्रीभक्ति विनोद ठाकुर द्वारा कई ग्रंथो से नाम महिमा को संग्रह कर इस ग्रंथ को हरिनाम चिंतामणि का नाम दिया गया है।किसी भक्त के माध्यम से भी नाम आचार्य श्रीहरीदास जी के विषय मे कुछ ग्रंथ प्राप्त करके उनकी कांट छांट करके श्रील भक्ति विनोद जी द्वारा वैष्णव मत के अनुकूल इन तथ्यों को प्रकाशित किया गया।

इस ग्रंथ में उन्होंने महामन्त्र के 16 नाम तथा 32 अक्षर का रस पर्क अर्थ प्राप्त हुआ। इस ग्रंथ को देख ऐसा लगता है कि

हरिदास ठाकुर जी ने अपने किसी शुद्ध भक्त को हरिनाम की दीक्षा दी थी। नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी से यह शिक्षा लेकर उन सब शिक्षाओं को लिपिबद्ध किया तथा छोटे छोटे ग्रंथों के रूप में प्रकाशित किया। उन ग्रंथों में जितनी भी शिक्षाएं श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी को प्राप्त हुई सब इस ग्रंथ में संकलित हैं।

निष्किंचन भक्तो के सुख की वृद्धि हो इसी उद्देश्य से उन्होंने इस ग्रंथ को प्रकाशित करवाया। इस ग्रंथ को सभी हरिनाम परायण वैष्णव जन पढ़ेंगे ऐसा श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी का मानना है। भजन साधन की पद्धतियां अनेक प्रकार की हैं परंतु नामाश्रित भजन की पद्दति यह एक ही है। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के समय से लेकर आज तक महापुरष हरिदास ठाकुर द्वारा दी गयी इसी पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं।ब्रज मंडल के वैष्णव लोग भी प्राचीन काल से इसी प्रणाली से भजन करते रहे हैं। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र के भजनानंदी महापुरष भी इसी प्रणाली का अनुसरण करते रहे हैं।

अपराध रहित तथा निसंग होकर निरन्तर हरिनाम कीर्तन तथा स्मरण की पद्धति है उसे ही श्रीहरि भक्ति विलास ग्रंथ में

श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीरूप भट्ट गोस्वामी ने स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है। यह हरिनाम चिंतामणि नाम का पद्य ग्रंथ है जिसका अनुसरण बालक , स्त्री तथा जो लोग संस्कृत भी नहीं जानते कर सकते हैं। वह सब इस ग्रंथ के पठन द्वारा श्रीमन महाप्रभु जी की शिक्षा पा सकते हैं। प्रमाण माला नाम के ग्रंथ में श्रीहरिनाम चिंतामणि के प्रत्येक वाक्य का शास्त्रीय प्रमाण है। श्रीकृष्ण की इच्छा अनुसार ही इस ग्रंथ का प्रकाशन श्रील भक्ति विनोद ठाकुर द्वारा हुआ है।

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

2

श्रीगोद्रुम चंद्राय नमः

पहला अध्याय

श्रीनाम महात्म्य सूचना

श्रीगदाधर पंडित तथा श्रीगौरांग महाप्रभु जी की जय हो। श्रीमति जान्ह्वी देवी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु जी, सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी, तथा पंडित श्रीवास आदि जितने भी भक्त हैं सबकी जय हो।

समुद्र के तट पर नीलांचल धाम के मंदिर में पुरुषोत्तम श्रीहरि, दारू ब्रह्म के रूप में अर्थात दिव्य लकड़ी से बनी श्रीमूर्ति के रूप में जीवों के उद्धार के लिए अवतरित हुए हैं। भगवान श्रीहरि इस रूप में अवतरित होकर समस्त दुनिया को धन सम्पदा व यश तथा मोक्ष आदि प्रदान करते हैं। भगवान के इसी धाम में अर्थात श्रीजगन्नाथ पुरी धाम में श्रीचैतन्य महाप्रभु जी , जो कि स्वयम भगवान श्रीकृष्ण हैं , जीवों को भव सिंधु से पार लगाने के लिए एक सन्यासी के रूप में अवतरित हुए हैं। भगवान श्रीचैतन्य देव जी कलियुग के युग धर्म ---- श्रीहरिनाम संकीर्तन के उपदेश को समझाने हेतु श्रीकाशी मिश्र के घर रहते हैं। यही नहीं वह अपने भक्तों के साथ बड़े उदार कल्प वृक्ष बनकर सभी को श्रीकृष्ण प्रेम प्रदान करते हैं।

भक्तों के मुख से हरिकथा सुननी चाहिए ,इस महान शिक्षा को देने के लिए आप स्वयम विभिन्न प्रकार के तत्वों की कथा बड़े ध्यान तथा आनन्द के साथ सुनते हैं। आपने श्रीराय रामानंद जी के मुख से रस तत्व की कथा, भट्टाचार्य जी के मुख से मुक्तित्त्व की कथा, श्रीरूप गोस्वामी के मुख से रस विचार तथा श्रीहरीदास ठाकुर जी के मुख से श्रीहरिनाम की महिमा सुनी थी।

एक दिन भगवान श्रीकृष्णचन्द्र चैतन्य महाप्रभु जी समुद्र में स्नान करके सीधे सिध्द बकुल की ओर चले गए। जहां उनकी भेंट श्रीहरीदास ठाकुर जी से हुई।बड़े आनन्द के साथ दोनो मिले।बात करते करते बड़े सुंदर ढंग से श्रीमन महाप्रभु जी ने श्रीहरिदास ठाकुर जी से पूछा --- हरिदास यह बताओ , किस प्रकार जीव सुगमतापूर्वक भव सागर को पार कर सकता है।

महाप्रभु जी का प्रश्न सुनकर हरिदास ठाकुर जी के नेत्रों सेअश्रु धाराएँ बहने लगी तथा उनका सारा शरीर पुलकायमान हो गया। बड़ी श्रद्धा के साथ उन्होंने महाप्रभु जी के चरणों मे प्रणाम किया तथा उनके चरण पकड़ अपनी स्वाभाविक दीनता के साथ महाप्रभु जी से कहने लगे--प्रभु ! आपकी लीला

सुगम्भीर है , मैं तो अति अकिंचन हूँ , मेरे पास भला विद्या धन कहाँ ! आपके श्रीचरण ही मेरा सहारा तथा सर्वस्व हैं । ऐसे अयोग्य व्यक्ति को आपने यह प्रश्न कर दिया है । अब आप ही बताएँ कि इसका फल क्या होगा। हे प्रभु ! आप तो स्वयम विभु अर्थात सर्व व्यापक श्रीकृष्ण हो तथा जीवों का उद्धार करने के लिए नवद्वीप धाम में आपने जन्म लिया है। हे गौरचन्द्र आपके इन लालिमा युक्त दिव्य चरणों मे कृपा करके मुझे स्थान दीजिये , तभी मेरा चित्त प्रफुल्लित होगा।हे गौरहरि जी आपके अनन्त नाम हैं आपके गुण भी अनन्त हैं और आपका रूप तो सुखों का सागर है । यही नहीं आपकी लीलाएं भी अनन्त हैं।आप मुझ पर कृपा करें तभी मेरे जैसा पामर जीव इन लीलाओं का आस्वादन कर सकता है।

हे गौरहरि ! आप चिन्मय सूर्य हो , मैं तो उस सूर्य की किरण का एक कणमात्र हूँ। हे गौरहरि ! आप मेरे नित्य प्रभु हो और मैं आपका नित्यदास हूँ। आपके चरणों का अमृत ही मेरा आनन्दमय वैभव है । बस, आपके नामामृत का रसास्वादन करने की मेरी बड़ी इच्छा है तथा आशा है कि कभी तो आप अपने नामामृत का मुझे पान करवाओगे।आपने जो प्रश्न किया उस विषय मे भला मैं क्या जानता हूँ , जो कहूँ। मैं तो बस आपकी आज्ञा का पालन करूंगा और आज्ञा पालन करते हुए

आप मेरे मुख से जैसे बुलवाओगे , वैसा ही बड़ी खुशी खुशी बोलता चला जाऊंगा। बस इतनी ही कृपा करना कि मेरे द्वारा दिये उत्तर में गुण अथवा दोष न देखना।

कृष्णतत्व

इच्छामय भगवान श्रीकृष्ण ही एकमात्र सर्वेश्वर हैं। वे श्रीकृष्ण नित्य हैं , सर्वशक्तिमान हैं , सर्वव्यापक हैं तथा सर्वश्रेष्ठ तत्व हैं। श्रीकृष्ण स्वतंत्र तथा स्वेच्छामय पुरुष हैं । वे स्वाभाविक रूप से ही अचिन्त्य शक्तियुक्त हैं।

श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्ण शक्ति

श्रीकृष्ण की शक्ति श्रीकृष्ण से कभी अलग नहीं है। वेदमन्त्रों में कहा गया है कि जो शक्ति है वे ही श्रीकृष्ण हैं अंतर केवल इतना है कि श्रीकृष्ण विभु हैं तथा शक्ति उनका वैभव स्वरूप है। अनन्त वैभव के द्वारा अर्थात अनन्त शक्तियों से युकत होकर भी श्रीकृष्ण एक स्वरूप कहे जाते हैं। कहने का तातपर्य यह है कि श्रीकृष्ण अनन्त शक्ति स्वरूप हैं , इसलिए उन्हें

सर्वशक्तिमान कहा जाता है । शक्ति से श्रीकृष्ण नहीं बल्कि श्रीकृष्ण से अनन्त शक्तियां प्रकाशित होती हैं।

तीन प्रकार के वैभव

शक्ति का जो प्रकाश है , उसी का वैभव कहा जाता है। विभु का वैभव ही केवल अनुभव में आता है। श्रीहरीदास ठाकुर कहते हैं हे गौरसुन्दर! आपका वैभव शास्त्र में चिद वैभव, अचिद वैभव तथा जीव वैभव -- इन तीन रूप में वर्णित है।

चिद वैभव

अनन्त वैकुंठ आदि जितने भी श्रीकृष्ण के असंख्य धाम हैं । गोविंद, श्रीकृष्ण, हरि आदि जितने भी इनके नाम हैं, द्विभुज वंशीधर, मुरलीधर, धनुर्धर, चतुर्भुज नारायण इत्यादि जितने भी भगवान के स्वरूप हैं, भक्त वात्सल्य इत्यादि जितने भी श्रीकृष्ण के मनोहर गुण हैं , ब्रज में रासलीला , नवद्वीप में नाम संकीर्तन , इस प्रकार जितनी भी श्रीकृष्ण की लीलाएं हैं --ये

सभी भगवान श्रीकृष्ण के अप्राकृतिक चिद वैभव हैं। प्राकृत जगत में आने पर भी यह प्राकृत नहीं हैं, यह सभी अप्राकृत हैं या यूं कहें कि ये उनके चिन्मय वैभव हैं। श्रीकृष्ण के ये सभी चिन्मय धाम, नाम , रूप , गुण व लीला इत्यादि सभी विष्णु तत्व का सार स्वरूप है। वेद इन सभी को विष्णुपद कहकर बार बार इनकी महिमा का वर्णन करते रहते हैं।

श्रीकृष्ण की चिद विभूति ही शुद्ध सत्व है

श्रीकृष्ण के चिद स्वरूप - जो श्रीकृष्ण के नाम , रूप, गुण, धाम , लीला व परिंकर आदि हैं, उनमे दुनियावी माया का विकार नहीं रहता है क्योंकि वह जड़ से परे हैं। ये विष्णु तत्व , शुद्ध तत्व का सार होता है। इस शुद्ध तत्व में रजोगुण तथा तमोगुण की कोई गन्ध नहीं रहती।ये सभी जानते हैं कि मिश्र सत्व में रजोगुण और तमोगुण मिले होते हैं।

श्रीगोविन्द, श्रीवैकुंठनाथ,श्रीनारायण, श्रीकर्णोद्शायी महाविष्णु, गर्भोदशायी विष्णु, शीरोदशायी विष्णु और जितने भी स्वांश नाम से परिचित भगवान के अवतार हैं , वे सभी शुद्ध

सत्व स्वरूप हैं तथा विष्णु तत्व का सार स्वरूप हैं। यह सभी विष्णु तत्व , गोलोक में, वैकुंठ में , कारण समुद्र में अथवा इस जड़ जगत में प्रवेश होने पर भी माया के अधीश्वर रहते हैं। विष्णु नाम ही विभु हैं, यह सभी देवताओं के ईश्वर हैं।

मिश्र सत्व

मायाधीश प्रभु , शुद्ध सत्वमय हैं तथा वे माया के भी ईश्वर हैं जबकि ब्रह्मा, शिव इत्यादि त्रिगुणात्मक देवता हैं, ये सभी मिश्र तत्व हैं।

चिद वैभव विस्तृति

श्रीहरीदास ठाकुर जी भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी को कहते हैं कि जितने भी विष्णु तत्व और विष्णु धाम व लीलाएं हैं। वे सभी आपके चिद वैभव हैं।

अचिद वैभव अथवा माया तत्व

विरजा नदी , जो कि भौतिक जगत और आध्यात्मिक जगत की सीमा है, के इस पार चौदह लोकों में जो कुछ भी है सभी अचिद वैभव है। इसे माया का वैभव भी कहते हैं अथवा इन्हें देवी धाम भी कहा जाता है। जिनमे जो कुछ भी बना है वह आकाश , मिट्टी, जल, वायु तथा अग्नि नामक पंच महाभूतों एवं मन , बुद्धि व अहंकार से बना है। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं -हे जगन्नाथ गौरहरि ! भूलोक, भुवलोक, स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक , तपलोक और सत्यलोक नामक ऊपर के लोक तथा अतल वितल आदि नीचे के सातों लोक आपकी माया के वैभव हैं।

जीव वैभव

सत्य यह है कि आपका चिद वैभव तो अपने आप मे पूर्ण तत्व है, चेतन तत्व है, जबकि माया वैभव तो इस वैभव की छाया है। आकार की दृष्टि से देखा जाए तो यह जीव अति अणु स्वरूप है परंतु चिन्मय होने के कारण जीव के गठन में ही स्वतंत्रता है तथा संख्या में यह जीव अनन्त हैं एवं सुख की प्राप्ति करना ही

इन जीवों का लक्ष्य होता है।

मुक्त जीव

उस नित्य सुख को प्राप्त करने के लिए जिन्होंने आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण को वरण किया , वे तो श्रीकृष्ण के पार्षद बन गए तथा मुक्त जीव के रूप में रहने लगे।क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

3

अध्याय 1

बद्ध तथा बाहिर्मुख जीव

इनके अलवा जिन जीवों ने अपने सुख की भावना से भगवान के पीछे रहने वाली माया को वरण किया अर्थात अपने सुख के लिए जिन्होंने माया के भोगों की कामना की वे सभी जीव नित्य काल के लिए श्रीकृष्ण से विमुख हो गए तथा उन्होंने माया के इस देवी धाम में माया के द्वारा बना शरीर प्राप्त किया । अब यहां वे भगवान से विमुख जीव पाप पुण्य रूपी कर्म के चक्र में पड़कर स्थूल व सूक्ष्म धारण करके इस संसार मे भटक रहे हैं । वे कभी स्वर्ग आदि लोकों में तो कभी नरक की प्राप्ति करते हुए चौरासी लाख योनियों को भोगते हुए भटकते रहते हैं।

तब भी श्रीकृष्ण की दया

श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को कहते हैं कि हे प्रभु ! मेरा ऐसा विश्वास है कि आप विभु हो और ये जीव आपका ही वैभव है। ये आपके नित्यदास हैं। अपने दास के मंगल की चिंता करना आपका स्वभाव है।आपके दास अपने सुख की खोज करते हुए आपसे जो कुछ भी मांगते हैं, आप

कल्पतरु की भांति अपनी कृपा रूपी बरसात को बरसाते हुए , उसे प्रदान करते रहते हो।

प्राकृत शुभकर्म कर्मकाण्ड

माया के वैभव में फंसकर जीव जिस प्रकार का भी अनित्य सुख चाहता है, आपकी कृपा से वह उसे अनायास ही पा लेता है। उसी सुख को प्राप्त करने के लिए ही धर्म कर्म , यज्ञ, योग, होम व व्रत इत्यादि शुभ कर्म बनाये गए हैं। ये सभी शुभ कर्म सदा ही जडमय रहते हैं । चिन्मय प्रकृति इन सबसे कभी नहीं मिलती।इन शुभ कर्मों को करने से दुनियावी नाशवान फल ही प्राप्त होते हैं। इनसे तो स्वर्ग आदि उच्च लोक तथा सांसारिक भोगों से मिलने वाला सुख ही मिलता है। आत्मा की शांति इनसे नहीं मिलती। इन सबका प्रयास करना ही अतिशय भ्रान्तिमय है। इन सब अनित्य कर्मों से अनित्य सुख ही मिलते हैं।

इस अवस्था से उद्धार का उपाय

सौभाग्यवश यदि कोई जीव साधु सँग प्राप्त करके यह जान लेता है कि वह भगवान श्रीकृष्ण का दास है तो इस महान ज्ञान को प्राप्त करके माया से पार हो जाता है। तुच्छ कर्मकांड में यह सब ज्ञान नहीं बताया गया है।

ज्ञानकाण्ड ब्रह्मालय सुख

इनके अलावा जो जीव माया के संसार को यन्त्रणामय जानते हैं और इससे बचने के लिए मुक्ति को प्राप्त करने का यत्न करते हैं, ऐसे जीवों को ज्ञानी जीव कहा जाता है। ऐसे लोगों के लिए आपने दयामय होकर ही ज्ञानकाण्ड नामक ब्रह्मविद्या प्रदान की है। उसी मायावाद रूपी विद्या को आश्रय करके इस संसार से मुक्त होकर जीव ब्रह्मा में लीन हो जाता है।

ब्रह्मा क्या वस्तु है

श्रीहरीदास ठाकुर जी कहते हैं --हे गौरहरि वह ब्रह्मा आपके अंगों की कांति है, जो कि ज्योतिर्मय है। विरजा नदी के उस पार जो ज्योतिर्मय ब्रह्मा धाम है , उसमे ब्रह्मज्ञानी लीन हो जाते हैं।

जिनके अलावा असुरों का भगवान विष्णु अपने हाथों से संहार करते हैं वे सब असुर भी माया से पार होकर उसी ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण बहिर्मुख जीव

वैसे देखा जाए तो कर्मी और ज्ञानी दोनो ही श्रीकृष्ण से बहिर्मुख हैं। ये जीव कभी भी श्रीकृष्ण की दासता को अर्थात श्रीकृष्ण की सेवा के सुख का आस्वादन नहीं कर सकते।

भक्ति उन्मुखी सुकृति

कर्मोंमुखी, ज्ञानोन्मुखी व भक्ति उन्मुखी -ये तीन प्रकार की सुकृतियाँ होती हैं। जिनमे भक्ति उन्मुखी सुकृति ही प्रधान है, जिसके फलस्वरूप जीव साधु भक्तों की संगति प्राप्त करता है। श्रद्धावान होकर जब कोई श्रीकृष्ण के भक्तों का सँग करे तब उस जीव की साधु सँग के प्रभाव से हरिनाम में रुचि उतपन्न हो जाती है तथा साथ ही उसके हृदय में जीवों के प्रति दयाभाव उमड़ पड़ता है। इस प्रकार साधु सँग के फल से उस श्रद्धावान

जीव को भक्ति पथ की प्राप्ति व इस सुंदर कल्याणकारी पथ पर चलने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

कर्मी और ज्ञानी के प्रति कृपा से गौण भक्ति पथ का विधान

भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य देव जी को हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे गौरहरि ! आप दया के सागर हो और जीवों के ईश्वर हो। कर्मी , ज्ञानी तथा भगवान से विमुख जीवों के उद्धार के लिए भी आप ततपर रहते हो। कर्म मार्ग तथा ज्ञान मार्ग पर चलने वाले जीव का भी उद्धार करने का यत्न करते रहते हो। उस पथ के पथिकों के मंगल की चिंता करते हुए आपने एक गौण भक्ति का मार्ग भी बना रखा है।

कर्मियों के पक्ष में कर्म का गौण भक्ति मार्ग

अपने अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि वर्ण व ब्रह्मचर्य, गृहस्थ आदि धर्मों का पालन करते हुए कर्मी व्यक्ति भी भगवाम को प्रसन्न करता है क्योंकि वर्णाश्रम धर्मों को पालन करने का विधान भी भगवान श्रीहरि ने बताया है। अपने इन्हीं कार्यों को निष्काम

भाव से करने से उसे सुकृति व उसके फलस्वरूप उसे सच्चे साधु का सँग प्राप्त होता है। वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले कर्म मार्ग के पथिक का आप हृदय शोधन कर देते हैं जिससे उसके अंदर पुण्य आदि करने की व फल से मिलने वाले स्वर्गादि को प्राप्त करने की प्रवृति खत्म हो जाती है और उस स्थान पर श्रद्धा का बीज आरोपित हो जाता है।

ज्ञानी का गौण भक्ति पथ

इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति ज्ञान मार्ग पर चलते हुए अपनी सुकृति के प्रभाव से तथा भक्तों की कृपा से अनन्य भक्ति पथ पर आ जाता है। साधु सँग के प्रभाव से उस ज्ञानी व्यक्ति की अनन्य भक्ति में अनायास ही श्रद्धा हो जाती है।श्रीचैतन्य महाप्रभु जी हरिदास ठाकुर जी से कहते हैं कि हरिदास , तुम ही तो बोलते हो कि मेरा दास मुझे भूलकर माया की दुर्गति में पड़कर अन्य तुच्छ फलों की आशा करता है, परन्तु मैं जानता हूँ कि उसका सुमंगल कैसे होगा। ईसलिये मैं उसकी भोग व मुक्ति की इच्छा छुड़वा कर उसको भक्ति का फल प्रदान करता हूँ।

गौण पथ की प्रक्रिया

हे गौरहरि ! आप बड़े दयालु हो । आप जीव की कामना के अनुसार उसे चलाते हुए भी किसी न किसी तरह से भक्ति के मार्ग में उसकी श्रद्धा उतपन्न कर देते हो। हे प्रभो! आप कृपामय हो, आपकी कृपा के बिना जीव कैसे शुद्ध हो सकता है।

कलियुग में गौणपथ की दुर्दशा

सतयुग में ध्यान योग के द्वारा आपने न जाने कितने ऋषियों को शुद्ध करके अपनी भक्ति प्रदान की। त्रेतायुग में यज्ञादि कर्मों द्वारा अनेक जीवों का शोधन किया तथा द्वापर में अर्चन मार्ग द्वारा बहुत से जीवों को आपने अपनी भक्ति प्रदान की।हे नाथ ! कलियुग के आगमन पर तो जीवों की बड़ी दुर्दशा हो गयी है। अभी देखा जाता है कि कर्म, ज्ञान तथा योग मार्ग के जीवों की दशा देखकर असहाय से हो गए हैं तथा इस प्रकार के जीवों का उद्धार होने का भरोसा खत्म हो गया है।इतना ही नहीं प्रभु इनकी आयु भी बहुत कम हो गयी है । वर्णाश्रम धर्म,सांख्य, ज्ञान , योग आदि साधनाएं कलियुग के जीवों का उद्धार करने

में समर्थ नहीं।ज्ञान मार्ग तथा कर्म मार्ग का जो गौण भक्ति मार्ग है , वह इतना संकीर्ण है कि उस पर चलना असम्भव हो गया है।कहने का तातपर्य यह है कीजो निष्काम भाव से वर्णाश्रम धर्म के पालन वाली बात है उसमें बाधा यह है कि लोगों के मन मे इतनी विषय भोगों की वासना बढ़ गयी है कि वे निष्काम नहीं हो पा रहे हैं। ज्ञान मार्ग की बात जहां तक है , वहां यह समस्या है कि दुनिया मे वास्तविक साधु बहुत दुर्लभ हैं , चारों ओर धर्म ध्वजी कपटी साधुओं का बोल बाला है। इन सब समस्याओं को देखकर हे प्रभु !आपने इन सबसे अलग और सर्वोत्तम हरिनाम की साधना बताई है , क्योंकि हरिनाम में स्वयम भगवान श्रीहरि विराजते है । बड़े सौभाग्य से ही हरिनाम का यह विशेष महत्व समझा जाता है।

हरिनाम संकीर्तन ही मुख्य पथ है

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी श्रीमन महाप्रभु जी से कहते हैं कि हे प्रभु ! आप जीवों के मंगल की चिंता करके इस कलियुग में हरिनाम रूप में स्वयम अवतरित हुए हो। आपने ही इस युग के युगधर्म श्रीहरिनाम संकीर्तन का प्रचार किया है। ये जीवों की आध्यात्मिक साधना का मुख पथ है , जिस पर चलकर जीव

श्रीकृष्ण प्रेम रूपी महाधन को पा सकते हैं । नाम स्मरण तथा नाम संकीर्तन ही इस युग का एकमात्र धर्म है इसलिए कलियुग के जीव इसी का पालन करेंगे।

साध्य साधन या उपाय उपेय में अभेदता होने पर हरिनाम की ही मुख्यता

जो साधन है, वही अब साध्य भी है, इस उपाय और उपेय के बीच अब कोई अंतर न रहा अर्थात साध्य तथा साधन में कोई भेद न रहा इसलिये जीव अनायास ही आपकी कृपा से भवसागर से पार हो जाते हैं।

मैं अति अधम हूँ, मैं विषयों में डूबकर अति मूढ़ से बन गया हूँ।यही कारण है कि मैंने आपका भजन नहीं किया । इस प्रकार बोलकर श्रीहरीदास ठाकुर जी नेत्रों से अश्रु बहाते हुए श्रीमन महाप्रभु जी के चरणों मे गिर पड़े।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि भगवान के भक्तों की सेवा करना ही जिनका आनन्द है , अर्थात भक्तों की सेवा

करने में ही जिनको आनन्द मिलता है ये हरिनाम चिंतामणि उन्हीं का जीवन स्वरूप है।

प्रथम अध्याय समाप्त

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

4

श्रीगोद्रुम चंद्राय नमः

दूसरा अध्याय

नामग्रहण विचार

श्रीगदाधर पंडित तथा श्रीगौरांग महाप्रभु जी की जय हो।
श्रीमति जान्ह्वी देवी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु जी,
सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी, तथा पंडित श्रीवास आदि जितने
भी भक्त हैं सबकी जय हो।

हरिनाम करते करते हरिदास ठाकुर जी हरिनाम के प्रेम में विभोर होकर रो रहे थे। श्रीहरिदास ठाकुर जी कोइस प्रकार प्रेम में डूबा देखकर श्रीचैतन्य महाप्रभु जी ने आलिंगन कर लिया और कहने लगे - हरिदास तुम्हारे जैसा भक्त मुझे कहाँ मिलेगा , सचमुच तुम सर्व शास्त्रों के सार को जानने वाले हो तथा तुम हमेशा ही माया से परे हो।

अनन्य भजन की श्रेष्ठता

नीचकुल में आकर तुमने सभी को दिखाया कि धन दौलत, मान सम्मान , ऊंचे कुल तथा शालीनता आदि से श्रीकृष्ण की प्राप्ति नहीं होती। भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी कहते हैं कि हरिदास वैसे भी अनन्य श्रीकृष्ण भजन में जिसकी प्रगाढ़ श्रद्धा होती है, वह तो देवताओं से भी अधिक श्रेष्ठ है।

श्रीहरिदास की नाम आचार्यता

हरिदास!तुम जानते ही हो कि हरिनाम करना ही सभी शास्त्रों का सार है। आचरण की दृष्टि से आप तो श्रीहरिनाम के आचार्य हो और श्रीहरिनाम के प्रचार में तुम प्रवीण हो। हरिदास तुम अपने मुख से हरिनाम की जो अपार महिमा है , उसका वर्णन करो क्योंकि तुम्हारे मुख से यह सुनकर मुझे बहुत आनन्द मिलता है।

वैष्णव लक्षण

जिसके मुख से एकमात्र कृष्ण का नाम उच्चारण होता है उसे वैष्णव समझना चाहिए। ग्रहस्थ भक्तों को चाहिए कि वह अति यत्न के साथ इस सिद्धांत को मानें।

वैष्णवतर के लक्षण

जिसके मुख से निरन्तर कृष्ण नाम सुनाई पड़ता है अर्थात जो निरन्तर कृष्ण नाम जप करता है वह श्रेष्ठ वैष्णव है। ऐसा

वैष्णव सभी गुणों की खान होता है।

वैष्णवतम लक्षण

जिस वैष्णव के दर्शनमात्र से ही मुख से श्रीकृष्ण नाम उदित हो जाता है तथा जीव को श्रीकृष्ण की भक्ति प्राप्त हो जाती है, वही उत्तम वैष्णव है। भगवान चैतन्य महाप्रभु जी कहते हैं कि जीव किस रूप से श्रीकृष्ण का नाम करे, इस विधान को तुम मुझे विस्तार से बतलाओ। महाप्रभु जी की बात सुन हरिदास जी के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी तथा वह विस्तार करने लगे।

नाम का स्वरूप

श्रीकृष्ण नाम चिंतामणि है, अनादि तथा चिन्मय है। जो श्रीकृष्ण हैं , वही श्री हरिनाम है।श्रीकृष्ण और श्रीकृष्णनाम एक ही तत्व है। चेतन विग्रह श्रीहरिनाम का नित्यमुक्त तत्व है। हरिनाम और नामी भगवान भिन्न नहीं है, दोनो ही नित्य शुद्ध तत्व है। इस जड़ जगत में प्रभु हरिनाम के अक्षर के आकार में प्रकट हैं।रसिक भक्तों के हृदय में हरिनाम के अक्षर ही रस से भरे शुद्ध सात्विक अवतार हैं। श्रीकृष्ण नामक तत्व चार प्रकार

नाम , रूप , लीला तथा धाम से प्रकाशित है।क्योंकि श्रीकृष्ण अनादि तत्व हैं इसलिए उनका नाम , रूप, लीला तथा धाम भी दिव्य तथा अनादि हैं।

हरिनाम नित्य सिद्ध हैं

भगवान श्रीकृष्ण नित्यस्वरूप हैं, आनन्द स्वरूप हैं तथा उनके जैसा कोई दूसरा नहीं है। जैसा पहले भी बताया जा चुका है कि किसी भी वस्तु का परिचय उसके नाम , रूप, गुण तथा कर्म से जाना जाता है। संधिनी शक्ति के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण का इन चारों रूपों में नित्य तथा दिव्य परिचय मिलता है। भगवान के नाम, रूप तथा गुण भी चिन्मय, नित्य सिद्ध तथा दिव्य हैं।जिस प्रकार श्रीकृष्ण समस्त विश्व को अपनी ओर आकर्षित करते हैं , उसी प्रकार श्रीकृष्ण नाम,रूप तथा गुण आदि में भी यह आकर्षण धर्म नित्य विराजित है।

श्रीकृष्ण का रूप नित्य है

श्रीकृष्णं का रूप सदा श्रीकृष्ण से अभेद है।उनका नाम तथा उनका रूप एक ही वस्तु हैं तथा उनमें भेद नहीं है। श्रीनाम का स्मरण करते करते ही उसके साथ रूप प्रकट होता है। श्रीकृष्ण का नाम तथा रूप सर्वदा अभेद होने से साधक के हृदय में नाम के साथ रूप भिन्न भिन्न प्रकार से क्रीड़ा करता है।

श्रीकृष्ण के गुण भी नित्य हैं

श्रीकृष्ण के गुण नित्य हैं । श्रीकृष्ण के अनन्त अपार गुण होने पर भी उनके 64 गुण नित्य हैं।जिनके अपने अंश से तमाम अवतार प्रकट हुए हैं। जिनके गुण अंश से ब्रह्मा जी व शिव आदि ईश्वर प्रकट हुए हैं, जिनके गुणों के कारण ही श्रीमन नारायण 60 गुणों के मालिक हैं -ऐसे भगवान श्रीकृष्ण के अपने अनन्त नित्य गुण तथा अनन्त नित्य नाम हैं तथा वह सब दुनियावी नहीं अपितु माया के गुणों से रहित बैकुंठीय हैं।

भगवान श्रीकृष्ण की लीला भी नित्य है

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान चैतन्य देव् जी को कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्ण के गुण रूपी सागर की तरंगों से

ही उनकी लीलाओं का विस्तार होता है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि गोलोक में, बैकुंठ में तथा ब्रज में होने वाली उनकी सभी लीलाएं चिन्मय हैं।

भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला आदि भगवान से पृथक नहीं हैं

भगवान श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीला हमेशा ही श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं तथा इस जगत में भी वे उनसे अभिन्न रहकर ही उदित होती है। हाँ माया के संस्पर्श से बद्ध जीव के नाम, रूप , गुण तथा क्रिया यह सब जीव से अलग होते हैं। शुद्ध जीव का नाम ये एक ही तत्व है। जीव का दुनियावी नाम तथा दुनियावी रूप जीवात्मा से अलग होता है। माया से बनी देह का अप्राकृत देही से भिन्न होना ही विवेक है। क्योंकि श्रीकृष्ण में माया की गंध नहीं है , इसलिए श्रीकृष्ण के नाम , रूप, लीला तथा गुण आदि तत्व एक ही होते हैं।

हरिनाम ही सभी का मूल है

भगवान के नाम, रूप, गुण तथा लीला इन चार परिचयों के बीच

मे उनका नाम सभी का आदि है अर्थात मूल है। इसलिए हरिनाम करना ही वैष्णवों का एकमात्र धर्म है। हरिनाम करते रहने से ही उनके अंदर से उनके रूप, गुण तथा लीला प्रकाशित होती है। श्रीकृष्ण की समस्त लीलाएं नाम मे ही विद्यमान हैं। श्रीहरीदास ठाकुर जी चैतन्य महाप्रभु जी से कहते हैं कि हे गौरहरि ! आपका ही यह विधान है कि हरिनाम ही सर्वश्रेष्ठ तत्व है।

वैष्णव और वैष्णव प्राय में भेद है

भगवान के उसी सर्वश्रेष्ठ नाम को जो बद्धजीव जब श्रद्धा एवं शुद्ध रूप से करता है तो उसे वैष्णव कहा जाता है। परंतु जिसका नामाभास हुआ करता है , उसी को वैष्णव प्राय कहा जाता है। इस प्रकार का वैष्णव प्रायः व्यक्ति हरिनाम करते धीरे धीरे शुद्ध वैष्णव बनकर शुद्ध लाभ प्राप्त करता है।क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

श्रीचैतन्यदेव की जय हो

अध्याय 2

इस मायिक जगत में कृष्णनाम और जीव दो चिन्मय वस्तु हैं

श्रीकृष्णनाम के बराबर इस संसार मे कोई वस्तु नहीं हैं। श्रीकृष्ण के भंडार में हरिनाम ही परम धन है। इस जगत में श्रीकृष्णनाम तथा जीव ही चिन्मय हैं बाकी तो सारा संसार ही मायिक जगत है।

मुख्य और गौण रूप से नाम दो प्रकार के हैं

मुख्य और गौण भेद से श्रीकृष्ण के नाम भी दो प्रकार के हैं। मुख्य नाम के आश्रय से ही जीव सभी वस्तुओं को प्राप्त करता

है। भगवान की चिन्मय लीलाओं का आश्रय करके जितने भी श्रीकृष्ण के नाम हैं , सभी भगवान के मुख्य नाम हैं तथा ये नाम ही तमाम गुणों की खान है।

मुख्य नाम

गोविंद, गोपाल, राम, श्रीनन्दनन्दन, राधानाथ, हरि, यशोमति प्राणधन, मदनमोहन, श्यामसुंदर, माधव, गोपीनाथ, ब्रजगोप, राखाल, यादव यह सभी नाम नित्यलीला के प्रकाशक हैं। जिनके कीर्तन से जीव श्रीकृष्ण धाम को प्राप्त करता है।

गौण नाम और उनके लक्षण

वेदों के अनुसार जड़ प्रकृति के परिचय और गुणों से सम्बंधित जितने भी भगवान के नाम हैं , उनको गौण नाम कहते हैं। जैसे सृष्टिकर्ता, परमात्मा, ब्रह्मा,स्थितकर, जगत संहार कर्ता, पालन कर्ता , यगेश्वर हरि आदि।

मुख्य नामों और गौण नामों के फल का भेद

शास्त्रों के मतानुसार कर्मकांड तथा ज्ञानकाण्ड के भीतर जो नाम आते हैं, वे सभी पुण्य तथा मोक्ष प्रदान करने वाले हैं। हरिनाम का मुखय फल एकमात्र श्रीकृष्ण प्रेमधन को प्राप्त करना है। ये मुख्य नाम के द्वारा ही इस धन की प्राप्ति होती है यह शास्त्र कहते हैं।

नाम और नामाभास में फल भेद

शास्त्रों के मतानुसार यदि एक कृष्ण नाम किसी के मुख से निकले तथा कानों के रस्ते से किसी के भीतर प्रवेश करे तो वह चाहे शुद्ध वर्ण हो या अशुद्ध वर्ण , हरिनाम के प्रभाव से वह जीव भवसागर से पार हो जाता है।किंतु इसमे एक बात सुनिश्चित है कि नामाभास होने पर वास्तविक फल की प्राप्ति में विलम्ब होता है। हरिनाम करने वाले के जब नामाभास द्वारा सारे पाप तथा अनर्थ निवर्त हो जाते हैं तब शुद्ध नाम भक्त की जिव्हा पर नृत्य करता है। उसी समय शुद्ध नाम के प्रभाव से जीव को श्रीकृष्ण प्रेमधन की प्राप्ति होती है।

हरिनाम में व्यवधान से दोष होता है

हरिनाम को कोई व्यक्ति भगवान श्रीहरि से भिन्न समझे तो उससे अपराध होता है। इसी अपराध के कारण साधक को भगवत प्रेम की प्राप्ति में बाधा होती है। नाम तथा नामी में भेद बुद्धि से ही रुकावट होती है, ऐसी रुकावट बने रहने पर साधक के हृदय में प्रेम कभी उदित नहीं हो सकता।

व्यवधान दो प्रकार का है

श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्णनाम में भेद करना ही मायावाद का दोष है। शास्त्रों का विचार है कि यह कलि का ही बिछाया हुआ जंजाल है।जबकि वास्तविकता यह है कि श्रीकृष्णनाम चिन्मय है तथा किसी भी प्रकार श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं है।

व्यवधान रहित नाम ही शुद्ध नाम है

अतैव शुद्ध श्रीकृष्णनाम ही जिनके मुख से निकलता है , वही

शुद्ध वैष्णव है। ऐसे हरिनाम करने वाले की आदर के साथ सेवा करनी चाहिए।

अनर्थ जितने नष्ट होते हैं उतना ही नामाभास दूर होता है एवं चिन्मय नाम प्रकाशित होता है

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि नामाभास को छोड़कर शुद्ध नाम प्राप्त करने के लिए जीव को यत्न के साथ सद्गुरु की सेवा करनी चाहिए। भजन करते करते जिस समय सारे अनर्थ नाश हो जाते हैं , उसी समय चित स्वरूप श्रीहरिनाम जीव की जिव्हा पर नृत्य करता है। हरिनाम तो अमृत की धारा है , जिसे पान करके छोड़ने का विचार ही नहीं होता।हरिनाम के आनन्द में मत्त होकर नाम ही नृत्य करने लगता है।

श्रीहरिनाम के प्रभाव से जीव तो नाचता ही है , जीव का हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम भी उसके साथ साथ नृत्य करता है, साथ जी जगत के लोगों को भी नचाता है और ऐसे में माया तो वहां से कोसों दूर चली जाती है।

जिसकी नाम मे श्रद्धा होती है उसी का हरिनाम में अधिकार होता है। हरिनाम में ही सारी शक्तियां हैं

भगवान ने सभी मनुष्यों को हरिनाम करने का अधिकार दिया है। साथ ही भगवान ने हरिनाम में अपनी सारी शक्तियां प्रदान कर दी हैं।जिनकी हरिनाम में श्रद्धा होती है, वह ही हरिनाम का अधिकारी है।जिसके मुख से श्रीकृष्णनाम उच्चारित होता है वह ही आचरनशील वैष्णव है।

हरिनाम में स्थान, समय व अशौच आदि की कोई सीमा नहीं है

हरिनाम में इतनी शक्ति है कि हरिनाम करने वाले को स्थान, समय व अशौच आदि के जितने भी नियम हैं , वे पालन नहीं करने पड़ते क्योंकि हरिनाम ही इतना प्रभावशाली है कि वह अपवित्र को भी पवित्र कर देता है।

कलि से ग्रस्त जीवों का नाम मे निष्कपट विश्वास होने पर ही उन्हें हरिनाम करने का अधिकार प्राप्त होता है

दान, यज्ञ, स्नान, जप आदि करने में तरह तरह के विचार हैं । किंतु श्रीकृष्ण संकीर्तन में श्रद्धा करने वाला ही एकमात्र उसका अधिकारी है। युगधर्म में हरिनाम का , अनन्य श्रद्धा से जो आश्रय करता है , उस को सभी कुछ प्राप्त होता है। हम कलियुग के जीवों के लिए हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि कलियुग के जीव निष्कपट रूप से श्रीकृष्ण के संसार मे रहकर हमेशा श्रीकृष्ण का नाम करेंगे।

हरिनाम के अनुकूल विषय ग्रहण करना और प्रतिकूल विषय वर्जन

भजन के अनुकूल जितने कार्य हैं , उनको स्वीकार करते हुए तथा भजन के प्रतिकूल जितने भी कार्य हैं उनका त्याग करते हुए श्रीकृष्ण के संसार मे रहकर जो जीवन यात्रा का निर्वाह करता है , उसके हृदय में निरन्तर श्रीकृष्णनाम उदित होता है।शुद्ध हरिनाम करने वाला श्रीकृष्ण के संसार मे रहकर

निरन्तर भगवद स्मरण के साथ हरिनाम करता रहता है।

अनन्य बुद्धि के साथ हरिनाम करना

श्रीनामाचार्य हरिदास ठाकुर जी हरिनाम करने वालों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हरिनाम करने वाले को चाहिए कि वह हरिनाम के अलावा कोई और धर्म कर्म न करे।श्रीकृष्ण से स्वतंत्र भी कोई ईश्वर है, इस भावना से किसी की पूजा न करे ।बस कृष्ण नाम तथा भक्त सेवा सदा करता रहे।ऐसा करने पर श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होगी।

श्रीहरीदास ठाकुर जी रोते हुए महाप्रभु जी के चरणों मे गिरकर हरिनाम में अनुराग होने का वरदान मांगने लगे।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिदास ठाकुर जी के चरणों मे जिनका अनुराग है, श्रीहरिनाम चिंतामणि उनका ही जीवन स्वरूप है।

द्वितीय अध्याय समाप्त

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

6

तीसरा अध्याय

नामाभास विचार

श्रीगदाधर पंडित, श्रीगौरांग महाप्रभु व जान्ह्वी देवी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो । सीतापति श्री अद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि भक्तों की सर्वदा ही जय हो। हरिदास जी से हरिनाम की महिमा सुनकर महाप्रभु जी बड़े प्रसन्न हो गए और गदगद होकर उन्होंने श्रीहरिदास ठाकुर जी को अपनी बांहों में उठा लिया और कहने लगे कि हरिदास तुम

मेरी बात सुनो। अब आप मुझे नामाभास क्या है यह स्पष्ट रूप से बताओ क्योंकि नामाभास की पूरी जानकारी होने से ही जीवों का शुद्ध नाम होगा और तब अनायास ही जीव हरिनाम के गुणों के प्रभाव से भव से पार हो जाएंगे।

नामाभास

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हरिनाम रूपी सूर्य उदित होकर मायारूपी अंधकार का नाश करता है परंतु हरिनाम रूपी सूर्य को अज्ञान रूपी ओस व अनर्थ रूपी बादल बार बार ढक लेते हैं। जीव के यह अज्ञान और अनर्थ रूपी कोहरा और बादल बड़े घने होते हैं। श्रीकृष्ण नाम रूपी सूर्य जीव के चित्त रूपी आकाश में जैसे ही उदित होता है , उसी समय अज्ञान रूपी कोहरा तथा अनर्थ रूपी बादल उसे ढक लेते हैं।

अज्ञान रूपी कोहरा होता है-स्वरूप भ्रम

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि जीव हरिनाम के चिन्मय

स्वरूप को नहीं जानता है। इसी अज्ञानता रूपी कोहरे से उसके आगे अंधेरा हो जाता है। श्रीकृष्ण ही सर्वेश्वर हैं , जो यह नहीं जानता है , वह ही विभिन्न देवी देवताओं की पूजा करता हुआ कर्म मार्ग में भटकता रहता है।इसके अलावा जीवात्मा का स्वरूप भी चिन्मय है जिसको यह ज्ञान भी नहीं है , वह तो समझो माया के द्वारा बुरी तरह जकड़ा हुआ हर समय अज्ञान में ही रहता है। तभी श्रीहरीदास जी आनन्द से कहने लगे -मैं तो आज धन्य हो गया हूँ क्योंकि आज मेरे मुख से स्वयम श्रीचैतन्य महाप्रभु जी हरिनाम महिमा सुनेंगे। हे गौरहरि जी !श्रीकृष्ण प्रभु और जीव उन्हीं श्रीकृष्ण का दास है तथा माया तो जडात्मिका है , जो जीव यह नहीं जानता उसके सिर पर अज्ञान रूपी छाया मंडराती रहती है । श्रीकृष्ण प्रभु हैं, जीव उनका नित्य दास है तथा माया जड़ है इसे अच्छी तरह से जान लेने पर जीव का सारा अज्ञान नष्ट हो जाता है।

बादल रूपी हैं-असदतृष्णा, हृदय की दुर्बलता और अपराध

श्रीकृष्ण नाम रूपी दिव्य सूर्य के सामने असद तृष्णा, हृदय की दुर्बलता एवं अपराध आदि के बादल रूपी अनर्थ आकर उसको ढकने लगते हैं । हरिनाम रूपी सूर्य की रोशनी को जब ये अनर्थ रूपी बादल ढक लेते हैं तो जीव का नामाभास होता है। ऐसी

अनर्थ युक्त अवस्था मे , स्वतः सिद्ध कृष्ण नाम हमेशा ही ढका रहता है।

नामाभास की अवधि

जितने समय तक सम्बन्ध तत्व का ज्ञान नहीं होता है,उतने समय तक जीव का नामाभास ही होता है। यधपि ऐसी अवस्था मे भी साधक सद्गुरु के आश्रय में ही रहता है। परंतु जब तक वह दृढ़ता पूर्वक भजन नहीं करता , तब तक उसके ये अनर्थ रूपी बादल नहीं छटते अर्थात साधक के भजन की निपुणता से ही से अनर्थ रूपी बादल छिन्न भिन्न होंगे।

सम्बन्ध,अभिदेय और प्रयोजन

अज्ञान व अनर्थ रूपी कोहरा व बादलों के हट जाने पर हरिनाम रूपी सूर्य प्रकाशित हो उठता है। ये हरिनाम रूपी सूर्य प्रकाशित होकर भक्तों को श्रीकृष्ण प्रेम रूपी आनन्द प्रदान करता है।सद्गुरु जीव को सम्बन्ध ज्ञान प्रदान करके अभिदेय के रूप उससे हरिनाम का अनुशीलन करवाते हैं अर्थात सद्गुरु

उसे हरिनाम के श्रवण कीर्तन तथा स्मरण के लिए कहते हैं।गुरु जी की कृपा से अल्प समय मे ही हरिनाम रूपी सूर्य के तेज से अनर्थ रूपी कोहरा दूर हो जाते हैं। उसके बाद श्रीहरिनाम जीव को प्रयोजन तत्व प्रेमतत्व प्रदान करते हैं। उस प्रेमधन को प्राप्त करके जीव श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन करता है।

सम्बन्ध ज्ञान

सद्गुरु के चरणों मे जीव जब श्रद्धा के साथ उपस्थित होता है तो उसे सर्वप्रथम सद्गुरु से सम्बन्ध ज्ञान की प्राप्ति होती है। उसे अच्छी तरह से मालूम पड़ जाता है कि श्रीकृष्ण ही नित्य प्रभु हैं और जीव उनका नित्यदास है तथा यह नित्यसिद्ध श्रीकृष्ण प्रेम जीव के स्वरूप में प्रकाशित है। जीव श्रीकृष्ण का नित्यदास है , यह भूलकर ही वह माया के जगत में सुख की खोज कर रहा है।श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि मायिक जगत तो जीव का कारागार है।जीव की भगवद विमुखता दोष के कारण उसको यह दण्ड देकर शोधन किया जाता है।इस दशा में जीव साधु वैष्णवों की कृपा प्राप्त करता है तो वह पुनः सम्बन्ध ज्ञान के द्वारा श्रीकृष्ण नाम प्राप्त करता है। जिसके सामने सायुज्य, सामीप्य आदि मुक्तियाँ तुच्छ सी प्रतीत होती

हैं। जब तक किसी का सम्बन्ध ज्ञान पूरी तरह पक्का नहीं हो जाता , तब तक वह अनर्थों से रहित होकर शुद्ध हरिनाम नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में उसके द्वारा किया गया हरिनाम केवलमात्र नामाभास होता है।

नामाभास का फल

नामाभास की स्थिति में भी बहुत मंगल होता है। एक तो जीव की सुकृति प्रबल होती चली जाती है । दूसरा नामाभास से उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं तथा साथ ही साथ मनुष्य के भीतर की भोग वासनाएं हर तरह का छल कपट झगड़े आदि की वासनाएं भी समाप्त हो जाती हैं। नामाभास के प्रभाव से पतित से पतित जीव भी अपने कुल के साथ पवित्र हो जाता है तथा आसानी से मुक्ति प्राप्त कर लेता है। उसके सभी रोगों का निवारण हो जाता है। जीव के अंदर भरे सभी प्रकार के सन्देह नामाभास से दूर हो जाते हैं। नामाभासी व्यक्ति सभी प्रकार के काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार आदि शत्रुओं से मुक्त होकर पूर्ण शांति को प्राप्त कर लेता है। नामाभास के प्रभाव से यक्ष, रक्ष, भूत, प्रेत,ग्रह तथा अनर्थ दूर हो जाते हैं । नामाभास के प्रभाव से सभी प्रकार के प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं।

नामाभास के द्वारा नर्कगामी व्यक्ति को भी मुक्ति मिलती है। सभी वेदों को पढ़ने, सभी तीर्थों को करने तथा अनेक प्रकार के शुभ कर्मों को करने से भी अधिक है नामाभास की महिमा अर्थात नामाभास इन सबसे श्रेष्ठ है।

नामाभास से वैकुंठादि प्राप्त होता है

नामाभास धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन सबको देने वाला है। इसके अतिरिक्त नामाभास जीव का उद्धार करने की पूरी शक्ति रखता है। ये दुनिया के सभी सुखों को देने वाला तथा श्रेष्ठ पद प्रदान करने वाला है। जिसका किसी तरह से कल्याण नहीं हो सकता , उसका भी नामाभास से कल्याण सम्भव है। नामाभास कि स्थिति को प्राप्त करना ही अपने आपमें श्रेष्ठ पद है। विशेषतः शास्त्र कहते हैं कि इस कलियुग में नामाभास के द्वारा ही वैकुंठ की प्राप्ति होती है। श्रीहरीदास ठाकुर जी कहते हैं कि जहां तक मुझे ज्ञात है -संकेत, परिहास, स्तोभ तथा हेला यह चार प्रकार के नामाभास हैं।

संकेत रूपी नामाभास दो प्रकार के होते हैं

पहला तो भगवान विष्णु को लक्ष्य करके दुनियावी बुद्धि से जब भगवान का नाम उच्चारण किया जाता है तथा दूसरा तब, जब भगवान के अतिरिक्त कहीं और ध्यान हो और मुख से भगवान का नाम उच्चारण किया जाए। संकेत रूपी नामाभास इन्हीं दो प्रकार का होता है। सांकेतिक नामाभास का शास्त्रों में अजामिल के उदहारण द्वारा वर्णन है। हा राम ! हा राम! उच्चारण से सभी यवन अनायास ही मुक्त हो जाएंगे । अन्यत्र किसी वस्तु को संकेत करते हुए भी भगवान का नाम लिया जाता है , इस तरह के नामाभास में भी हरिनाम का जो प्रभाव है वह समाप्त नहीं होता है।

परिहास नामाभास

जो जीव परिहास करते हुए भी श्रीकृष्ण नाम लेते हैं , जरासन्ध की तरह वे भी इस संसार से पार हो जाते हैं।

स्तोभ नामाभास

शिशुपाल की तरह और किसी उद्देश्य से लिया गया नाम ,स्तोभ नामाभास कहलाता है। इससे भी जीव का भव बन्धन दूर हो जाता है।

हेला नामाभास

हरिनाम में मन न लगाकर सहज भाव से यदि कोई कृष्ण या राम नाम का उच्चारण करता है तो इससे उसका हेला नामाभास होता है। ऐसे नामाभास के द्वारा सभी म्लेच्छ भी भव सागर से तर जाते हैं। अधिकतर विषयी तथा आलसी लोगों के द्वारा ऐसा नामाभास होता है।

अश्रद्धापूर्वक नाम ग्रहण तथा हेला नामाभास में भेद

श्रीहरिदास जी महाप्रभु जी से कहते हैं कि अनर्थयुक्त जीव भी यदि श्रद्धा के साथ कृष्णनाम करता है तो उसे भी आप श्रद्धापूर्वक लिया गया हरिनाम ही कहते हो। हेला नामाभास

तक जितने भी प्रकार के नामाभास हैं , उनमे से किसी भी तरह का नामाभास यदि हो जाता है तो इस प्रकार श्रद्धा रहित नाम उच्चारण से भी जीवों के तमाम पाप खत्म हो जाते हैं तथा उनको मुक्ति की प्राप्ति होती है। क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

7

अध्याय 3

अनर्थ समाप्त होने पर नामाभास प्रेम प्रदान करता है

श्रीकृष्ण प्रेम को छोड़कर बाकी सब कुछ नामाभास से ही प्राप्त किया जा सकता है और यह नामाभास भी धीरे धीरे शुद्ध प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। अनर्थों के समाप्त होने पर जब साधक के मुख से शुद्ध हरिनाम होने लगता है तब उसे निश्चित रूप से

श्रीकृष्ण प्रेम प्राप्त हो जाता है। नामाभास साक्षात रूप से प्रेम प्रदान नहीं कर सकता परन्तु इस प्रकार का हरिनाम ही क्रमानुसार प्रेम मार्ग तक पहुंचा देता है।

नामाभास तथा नाम अपराध में भेद

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे सर्वेश्वर प्रभु! जो व्यक्ति नामापराध को छोड़कर भी नामाभास करते हैं , उन्हें भी मैं प्रणाम करता हूँ क्योंकि यह नामाभास कर्म मार्ग तथा ज्ञान मार्ग से अनन्त गुणा श्रेष्ठ है। श्रीहरीदास जी कहते हैं कि भगवत प्रेम उतपन्न करवाने वाली श्रद्धा यदि किसी के हृदय में शुद्ध भाव से विद्यमान हो तभी उसके मुख से विशुद्ध हरिनाम उच्चारित होगा।

छाया तथा प्रतिबिम्ब भेद से आभास दो प्रकार का होता है

ये आभास दो प्रकार के होते हैं-छाया नामाभास तथा प्रतिबिम्ब नामाभास ।हे प्रभु यह भी आपकी ही माया है कि श्रद्धा का आभास भी दो प्रकार का होता है। छाया श्रद्धाभास से छाया

नामाभास होता है और इसी से जीव का शुद्ध उदित होने लगता है।

प्रतिबिम्ब नामाभास -अन्य लोगों की भगवान में शुद्ध श्रद्धा को देखकर जो व्यक्ति अपने मन मे भी श्रद्धा का आभास लाता है , उसे प्रतिबिम्ब नामाभास कहा जाता है। उस जीव का अंदर इस श्रद्धा के साथ साथ दुनियावी भोग तथा मोक्ष की इच्छाएं भी रहती हैं और वह बिना प्रयास के ही अपनी अभीष्ट वस्तु कृष्ण प्रेम को पाने के लिए रात दिन नाम करता रहता है। यह श्रद्धा का लक्षण मात्र है , इसे वास्तविक श्रद्धा नहीं कहा जा सकता । शास्त्रों में इसे प्रतिबिम्ब श्रद्धाभास कहा गया है । प्रतिबिम्ब श्रद्धाभास की स्थिति में जितना भी नाम होता है वह प्रतिबिम्ब नामाभास ही होता है।

प्रतिबिम्ब नामाभास मायावाद रूपी कपटता को उतपन्न करता है

इस नामाभास मे मायावाद रूपी दुष्ट मतों का प्रवेश हो जाये तो यह नामाभास धूर्तता में बदल जाता है।

कपट प्रतिबिम्ब नामाभास ही नामापराध है

नित्य साध्य हरिनाम को सिर्फ साधन समझना हरिनाम की महिमा को कम आँकना है। यह भी नामापराध है। जो व्यक्ति हरिनाम को मात्र साधन समझता है वह बेचारा अपराधों में उलझकर खत्म हो जाता है। क्योंकि हरिनाम तो साक्षात हरि हैं इसलिए ये साधना के साथ साथ साध्य भी हैं।

छाया नामाभास तथा प्रतिबिम्ब नामाभास में अंतर

छाया नामाभास में केवल अज्ञान ही होता है , यह अनर्थ हृदय की दुर्बलता से ही होता है। एकमात्र हरिनाम ही ऐसी साधना है जिससे सारे दोष समाप्त हो जाते हैं। जबकि प्रतिबिम्ब नामाभास में यह दोष बढ़ जाते हैं।

मायावाद और भक्ति परस्पर विपरीत हैं। मायावाद ही अपराध है

मायावादियों के अनुसार श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण , लीला आदि सभी झूठे तथा नाशवान हैं। इनके मतानुसार भगवत प्रेम तत्व नित्य नहीं होता। ईसलिये मायावाद मत भक्ति मार्ग के

विपरीत है। भक्ति के शत्रु के रूप में मायावाद की गणना होती है। इसलिए मायावाद भगवत चरणों मे अपराधी होते हैं। मायावादी के मुख से भगवान का नाम नहीं निकलता या यूं कहें कि उनके मुख से भगवत नाम निकलने पर भी नाम तत्व की प्राप्ति नहीं होती। मायावादी यदि भगवत नाम उच्चारण भी करता है तो वह नाम को अनित्य ही समझता है जिससे उसका पतन होता है। हरिनाम करते हुए मन मे श्रीहरिनाम से दुनियावी भोगों और मोक्ष की प्रार्थना करना हरिनाम के प्रति धूर्तता है - जिसका परिणाम दुख है।

अपराध मायावादी को कब छोड़ते हैं

हाँ, यदि मायावादी भोग और मोक्ष की इच्छा को छोड़कर स्वयम को श्रीकृष्ण का दास समझकर पश्चाताप के साथ हरिनाम करता है तो मायावाद रूपी दुष्ट मत से उसका छुटकारा हो जाता है। इतना ही नहीं, साधु सँग करते हुए जब वह भगवत कथा श्रवण तथा कीर्तन करता है तो उसके हृदय में सम्बन्ध ज्ञान का अनुभव उदित होता है। श्रीहरीदास ठाकुर जी कहते हैं कि जब वह सम्बन्ध ज्ञान के साथ निरन्तर हरिनाम करता है तो उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगती है। वह हरिनाम की कृपा को प्राप्त करता हैतथा उसका चित आत्मबल से परिपूर्ण हो जाता है।

भक्ति का अनित्य बोलने के कारण ही मायावाद रूपी अपराध होता है

श्रीकृष्ण की शक्ति के अंश स्वरूप जीव का , श्रीकृष्ण की सेवा करना ही स्वभाव होता है जबकि मायावादी इसे अनित्य और कल्पित समझते हैं। ऐसे मायावाद की नाम अपराध के अंतर्गत गणना होती है। गम्भीरता से देखा जाए तो यह मायावाद तमाम मुसीबतों की खान है।

मायावादी नामाभास के द्वारा मुक्ति का आभास रूपी सायुज्य मुक्ति को प्राप्त करता है

नामाभास कल्पतरु के समान है इसलिए मायावादी को भी उसका अभीष्ट -सायुज्य मुक्ति प्रदान करता है। हरिनाम सर्वशक्तिमान है, इसलिए प्रतिबिम्ब नामाभास होने पर भी यह नाम मायावादी को मुक्ति का आभास प्रदान करता है। पांच प्रकार की मुक्तियों में सायुज्य तो मुक्ति का आभास मात्र है, जिसमे केवल संसारी चक्र समाप्त होता है परंतु भक्त की दृष्टि

में उसका यह फल सर्वनाश के समान है क्योंकि सायुज्य मुक्ति का प्राप्त हुआ जीव कभी भी श्रीकृष्ण प्रेम को प्राप्त नहीं कर सकता।

मायावादी कभी भी नित्य सुख को प्राप्त नहीं कर सकता

माया से मोहित व्यक्ति उसी को ही अर्थात सायुज्य मुक्ति को ही सुख समझता है क्योंकि सायुज्य मुक्ति में सुख का आभास मात्र होता है -वास्तविक सुख नहीं मिलता। वास्तविक मुक्तावस्था तो सच्चिदानन्द भगवान की सेवा की प्राप्ति में है। श्रीकृष्ण स्मृति के अभाव में सायुज्य मुक्ति को प्राप्त होने वाला जीव कभी भी श्रीकृष्ण सेवा प्राप्त नहीं कर सकता। जहां पर भक्ति की नित्यता अथवा कृष्ण प्रेम की नित्यता में विश्वास नहीं है, वहां पर नित्य सुख की प्राप्ति कैसे सम्भव है।

छाया नामाभास धीरे धीरे जीव को शुद्ध नाम की ओर ले जाता है-यदि वह दुष्ट मत में प्रवेश न करे तो

चूँकि छाया नामाभासी व्यक्ति का मायावाद रूपी दुष्ट मत से

कोई सम्बन्ध नहीं होता, इसलिए मतवादों के चक्कर मे पड़कर उसका चिदबल नष्ट नहीं होता। छाया नामाभासी व्यक्ति में केवल यह कमी होती है कि वह हरिनाम के वास्तविक प्रभाव को नहीं जानता जबकि हरिनाम का स्वभाव है कि वह अपने आश्रित को अपनी महिमा से अवगत करवा देता है। घने बादलों से ढक जाने के कारण सूर्य का तेज दिखाई नहीं पड़ता परन्तु यदि बादल छिन्न भिन्न हो जाएं तो सूर्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगता है। वैसे देखा जाए तो छाया नामाभासी व्यक्ति धन्य है क्योंकि सद्गुरु की कृपा से वह थोड़े ही दिन में अनायास ही भगवत प्रेम प्राप्त कर लेता है।

भगवत भक्तों को अवश्य ही मायावादियों के संग का त्याग करना चाहिए

हरिदास ठाकुर जी कहते हैं -हे महाप्रभु जी ! आपकी आज्ञा है कि भगवतभक्तों को मायावादियों का सँग सावधानीपूर्वक छोड़ देना चाहिए तथा शुद्ध नाम परायण होकर भगवान को प्रसन्न करने की चेष्ठा करनी चाहिए। आपकी इस आज्ञा का जो जीव पालन करता है , वह जीव धन्य है। जो अधम जीव इस आज्ञा का पालन नहीं करता है, वह चाहे किसी भी प्रकार के साधन

करे , उस जीव का करोड़ों जन्मों में भी उद्धार नहीं होगा। हे प्रभु ! आप हमें कुसंग से बचाकर अपने चरण कमलों में रखिए। आपके पादपदमों की कृपा के अतिरिक्त हमारे कल्याण का कोई और उपाय नहीं है।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिदास ठाकुर जी के पादपदमों में ही जिन्हें वास्तविक आनन्द की अनुभूति होती है, वे इस हरिनाम चिंतामणि का हमेशा गुणगान करते रहते हैं।

तृतीय अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

8

अध्याय 4

साधु अपराध --साधु निंदा

संता निंदा नामनः परममपराध वितनुते

यतः ख्याति यात कठमुसहतै तद्विग्रहाम

श्रीगदाधर जी के स्वरूप श्रीगौरांग महाप्रभु जी की जय हो तथा श्री जान्ह्वी देवी जी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु की जय हो। सीतापति अद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि सभी भक्तों की जय हो।

महाप्रभु जी कहने लगे -हरिदास जी! अब तुम नामापराध की विस्तृत व्याख्या करो। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहने लगे -हे महाप्रभु जी आपकी कृपा से मैं वही बोलूंगा जो आप मुझसे बुलवाओगे।

दस तरह के नामापराध

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हमारे शास्त्रों में दस प्रकार के

नाम अपराधों का वर्णन है। सचमुच मुझे तो इन नाम अपराधों से बहुत डर लगता है। हे प्रभु एक एक करके मैं इन सबके बारे में कहूंगा।

बस आप मुझे ऐसा बल प्रदान करते रहें जिससे मैं इन अपराधों से बचा रहूँ--

1भगवान के भक्तों की निंदा

2अन्य देवताओं को भगवान से स्वतंत्र समझना

3हरिनाम के तत्व को समझने वाले सद्गुरु की निंदा करना

4 शास्त्रों की निंदा करना

5 नाम मे अर्थवाद करना अथवा हरिनाम की महिमा को काल्पनिक समझना और यह मानना की शास्त्रों में हरिनाम की महिमा को उसके फल से बढ़ा चढ़ाकर कहा गया है।

6 हरिनाम के बल पर पाप करना

7अश्रद्धालु व्यक्ति को कृष्ण नाम का उपदेश देना

8अन्य शुभ कर्मों को हरिनाम के बराबर कहना घोर पाप है

9दूसरी तरफ ध्यान रखकर हरिनाम करने को हमारे पुराणकर्ता प्रमाद कहते हैं

10हरिनाम की महिमा को जानते हुए भी हरिनाम न करना तथा मैं और मेरे की आसक्ति से संसार मे लिप्त रहना।

साधु निंदा ही प्रथम अपराध है

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि मैं समझता हूं कि साधु निंदा ही पहला अपराध है।इस अपराध से जीव का हर प्रकार से अकल्याण होता है।

साधु के स्वरूप और तटस्थ लक्षणों का विचार

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! श्रीमद भागवत के 11 अध्याय में आपने श्रीकृष्ण के रूप में उद्धव जी को साधु के लक्षणों के बारे में बताया है। आपने कहा था कि साधु अर्थात भगवान का भक्त-दयालु,सहनशील,समदर्शी, सत्यवादी,विशुद्धात्मा,हमेशा दूसरे के हित मे लगा रहने वाला , कामना वासना से जिसकी बुद्धि विचलित न होने वाली हो, जितेंद्रिय, अकिंचन, मृदु, पवित्र,भगवान का भक्त,उतना ही भोजन करेगा जितनी जरूरत है,शांत मन वाला जिसकी कोई स्प्रहा न हो,धैर्यवान, स्थिर,श्रीकृष्ण के शरणागत,विषय

वासनाओं से दूर रहने वाला, गम्भीर,काम क्रोध आदि से मुक्त, मान सम्मान की परवाह न करने वाला ,सबको सम्मान देने वाला,दूसरों को हरिकथा सुनाने व भजन कराने में निपुण,दूसरों को धोखा न देने वाला तथा दूसरों से धोखा न खाने वाला तथा ज्ञानी।

हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! यह सब लक्षण जिसमे हैं वही साधु है , परन्तु हे प्रभु !स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण के भेद से , यह सभी लक्षण दो प्रकार के होते हैं जिन पर मैं अब विचार करूंगा।

स्वरूप लक्षण ही प्रधान लक्षण है , इसके आश्रय में तटस्थ लक्षण स्वयम ही उदित हो जाते हैं

भगवत भक्त के लक्षण दो प्रकार के होते हैं-स्वरूप लक्षण एवं तटस्थ लक्षण। श्रीकृष्ण के शरणागत होना ही साधु का स्वरूप लक्षण होता है जबकि जो अन्य गुण हैं -वे तटस्थ लक्षण हैं।सौभाग्य से जब किसी जीव को साधु सँग के प्रभाव से श्रीहरिनाम में रुचि होती है , तब वह श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन

करता हुआ श्रीकृष्ण के पादपदमों का आश्रय ग्रहण करता है। ये ही साधु का स्वरूप लक्षण है। श्रीनाम कीर्तन करते करते , हरिनाम करने वाले के अन्दर जो अन्य गुण आ जाते हैं ,उन्हीं को तटस्थ लक्षण कहते हैं जो कि वैष्णव देह में अवश्य प्रकट होते हैं।

वर्णाश्रम लिंग और नाना प्रकार के वेश द्वारा साधुतव की पहचान नहीं होती, केवल मात्र श्रीकृष्ण के शरणागत होना ही साधु का लक्षण है

वर्णाश्रम चिन्हों से एवम नाना प्रकार की वेशभूषा की रचना से , साधु के लक्षणों की गणना नहीं होती है। श्रीकृष्ण शरणागति ही साधु का लक्षण है और श्रीकृष्ण के शरणागत भक्त के मुख से ही श्रीकृष्ण का नाम संकीर्तन हो सकता है। गृहस्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी एवम सन्यासी के भेद से एवम शुद्र,वैश्य,क्षत्रिय तथा ब्राह्मण के प्रभेद से साधुत्व का निर्णय कभी नहीं किया जा सकता। जो श्रीकृष्ण के शरणागत हैं , वही साधु हैं, यही शास्त्रों का सार सिद्धांत है।

ग्रहस्थ में रहने वाले साधु के लक्षण

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहने लगे -हे प्रभु!आपने श्रीरघुनाथ गोस्वामी को लक्ष्य करके ग्रहस्थ आश्रम में साधु भक्त कैसे रहेंगे , इसकी सार शिक्षा दी है। आपने उस समय श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी जी को कहा था कि वह स्थिर होकर अपने घर जाएं एवं पागल न बनें। छलांग मारकर कोई भी भवसागर से पार नहीं होता।भगवत भक्ति की साधना में लगे रहें , साधना करते करते श्रीकृष्ण की कृपा से जीव धीरे धीरे भव सागर से पार उतर जाते हैं।दुनिया वालों को दिखाने के लिए बन्दर जैसा दिखावटी वैराग्य दिखाने की कोई आवश्यकता नहीं, संसार के विषयों के प्रति अनासक्त रहो तथा दुनिया मे रहने के लिए,ग्रहस्थ में रहने के लिए जितने विषयों की आवश्यकता हो उतने विषयों को कर्तव्य समझकर अनासक्त भाव से स्वीकार करते रहो। हाँ, हृदय में भगवान के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा रखो तथा साथ ही जगत के लोगों से अपना व्यवहार ठीक रखो, ऐसा करने से बड़ी जल्दी ही श्रीकृष्ण प्रसन्न होकर तुम्हारा उद्धार कर देंगे।

गृहस्थी साधु के लक्षण

हे प्रभु !आपने श्रीरघुनाथ दास जी को वैराग्य का रास्ता ग्रहण करने पर ,जो शिक्षा प्रदान की थी वह बड़ी अद्भुत थी। आपने कहा था कि ग्राम्य बातें अर्थात अश्लील बातें न तो सुनना और न ही बोलना। अच्छा खाना व अच्छा पहनना, यह भी वैरागी को शोभा नहीं देता ये भी मत करना।दूसरों को सम्मान देते हुए स्वयं अमानी होकर हमेशा श्रीकृष्ण नाम करते रहना तथा मानसिक चिंतन द्वारा ब्रज में श्रीराधा कृष्ण जी की सेवा करते रहना।

गृहस्थी और गृहत्यागी के स्वरूप लक्षण एक ही हैं

गृहस्थी और गृहत्यागी के लिए स्वरूप लक्षण एक ही हैं, किंतु आश्रम के भेद से, तटस्थ लक्षण का कुछ अलग विधान है। श्रीकृष्ण की अनन्य शरणागति ही भक्त का स्वरूप लक्षण है अर्थात मुख्य लक्षण है। जिसमे उक्त स्वरूप लक्षण हैं, उसमें तटस्थ लक्षण भी अवश्य होंगें।किंतु श्रीकृष्ण के किसी एकांत शरणागत व्यक्ति में, यदि किसी अंश में तटस्थ लक्षण पूर्ण उदित न होकर ,उसके आचरण में कुछ कमी रह जाये,तब भी वह साधु ही है। श्रीकृष्ण ने यह वाक्य श्रीमदभागवत तथा श्रीभगवत गीता में कहे हैं। ऐसे भक्त की यत्न के साथ हमेशा

तथा हर प्रकार से पूजा करनी चाहिए। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहने लगे -हे प्रभु !इसमें भी एक रहस्यमय सिद्धांत है। आपने ही कृपा करके वह समझाया है ,अन्यथा यह रहस्य भला मेरी समझ मे कैसे आता।

पिछले किये पापों को याद करके जो श्रीकृष्ण के शरणागत साधु की निंदा करता है वह नामापराधी है

श्रीकृष्णनाम में जब रुचि उदय होती है तब एक हरिनाम से ही पिछले सब किये पाप खत्म हो जाते हैं। हाँ, किसी किसी के जीवन मे देखा जाता है कि उसमें पिछले किये पापों की कुछ गन्ध है अर्थात गन्दे पापमयी संस्कार थोड़े बाक़ी हैं , परन्तु इसमे घबराने की कोई बात नहीं, श्रीहरिनाम के प्रभाव से पाप की वह गन्ध भी धीरे धीरे खत्म हो जाती है। परंतु जिन दिनों में वह पाप गन्ध खत्म हो रही होती है तो साधारण लोगों की नज़रों में वह पाप से ही लगता है , ऐसे में अथवा शरणागति ग्रहण करने से पहले किये हुए पापों को लक्ष्य करके जो वैष्णव अवज्ञा करते हैं या वैष्णवों का निरादर करते हैं वे पाखंडी हैं । वैष्णवो की निंदा रूपी दोष के कारण वे नाम अपराधी बन जाते हैं । श्रीकृष्ण भी उनसे असंतुष्ट हो जाते हैं।

श्रीकृष्ण के प्रति शरणागति ही साधु का लक्षण है, जो अपने को साधु बोलते हैं , वे दाम्भिक हैं

जो श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं , वे हमेशा, श्रीकृष्णनाम कीर्तन करते रहते हैं तथा श्रीकृष्ण की कृपा से ऐसे शरणागत व्यक्ति ही साधु कहलाते हैं। श्रीकृष्ण भक्त के अतिरिक्त और कोई साधु नहीं होता तथा जो अपने को साधु कहते हैं , वे धर्मध्वजी तथा घमंडी हैं , वे तो अपने वेश को दिखाकर अपनी पेट पूजा करते रहते हैं।

कम शब्दों में साधु निर्णय

जो वास्तविक साधु होता है , भगवत भक्त होता है , वह कहता है कि मैं तो हीन हूँ ,एकमात्र श्रीकृष्ण की शरण मे हूँ एवम जिसके मुख से हर क्षण हरिनाम उच्चारित होता रहता है , वही साधु है। वास्तविक भगवत भक्त अपने को तृण से भी अधिक हीन समझता है तथा वह वृक्ष के समान सहनशील होता है, स्वयम सम्मान की चाहना न रखकर दूसरे को सम्मान देता है ।

उसके मुख से उच्चारित श्रीकृष्णनाम ही दूसरों के हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम प्रकाशित करता है।क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 9

अध्याय 4

नाम परायण वैष्णव ही साधु हैं

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि इस प्रकार के अर्थात पहले जो कम अक्षरों में साधु के लक्षण बताये गए हैं, ऐसे साधु के मुख से जब मैं एक श्रीकृष्णनाम सुनता हूँ तो मैं उसे वैष्णव समझकर प्रणाम करता हूँ। क्योंकि वैष्णव ही जगद्‌गुरु हैं और वे ही जगत के बन्धु हैं। सभी वैष्णव जीवों के लिए कृपा के समुद्र होते हैं। इस प्रकार के वैष्णव की जो निंदा करते हैं , वे नरक में जाते हैं तथा जन्म जन्मान्तरों के चक्कर मे

फंसे रहते हैं। वैष्णव कृपा को छोड़कर भक्ति पाने का कोई और दूसरा उपाय नहीं है।वैष्णव की कृपा से सब जीवों को भक्ति प्राप्त होती है। वैष्णवों के देह में श्रीकृष्ण शक्ति रहती है ऐसे वैष्णवों को स्पर्श करने से भी कृष्ण भक्ति उदित हो जाती है। वैष्णवों की जूठन, वैष्णवों के चरणों का जल, वैष्णवों की चरण धूलि -ये तीनों ही भक्ति की साधना में बल प्रदान करने में बड़े प्रभावशाली हैं।

वैष्णव के द्वारा शक्ति संचार

वैष्णव के निकट यदि कुछ समय बैठा जावे तो उनके शरीर से श्रीकृष्ण शक्ति निकलकर श्रद्धावान हृदय को स्पर्श करके उसके शरीर को थोड़ा कम्पाकर उसके हृदय मे भक्ति उदित कर देती है। जो श्रद्धा सहित वैष्णव के निकट बैठते हैं , उनके हृदय में भक्ति उदित होगी। जब किसी के हृदय में भगवत भक्ति उदित होगी तो सर्वप्रथम उस जीव के मुख से श्रीकृष्णनाम निकलेगा एवं हरिनाम के प्रभाव से वह तमाम सर्वगुणों को प्राप्त कर लेगा।

वैष्णवों के किस किस दोष को देखने से वैष्णव निंदा होती है

माना किसी वैष्णव का जन्म छोटी जाति में हुआ हो और कोई व्यक्ति उसका यह जाति दोष देखे या किसी ने श्रीकृष्ण के चरणों मे पूर्ण शरणागति लेने से पहले अगर कोई पाप किया हो और कोई उस पाप को याद करवा कर उस भक्त की निंदा करे अथवा अचानक किसी वैष्णव से कोई पाप कर्म हो जाये या कोई वैष्णव ऐसी स्थिति में हो कि पहले पाप कर्म करता था परन्तु अब वह शरणागत रहकर भजन करता है परन्तु थोड़े बुरे संस्कार अभी बाक़ी हैं जिनको देखकर ही कोई उसकी निंदा करे या उसका अपमान करे तो वह अज्ञानी, वैष्णव निंदक,यमदण्ड का भागी बनता है। वैष्णवों के मुख से ही श्रीकृष्ण महात्म्य का प्रचार होता है। ऐसे वैष्णवों की निंदा को श्रीकृष्ण बिल्कुल भी सहन नहीं करते । दुनियावी भोग दिलाने वाले धर्म कर्म यज्ञ अथवा मोक्ष दिलाने वाले ज्ञान कांड को भी छोड़कर जो श्रीकृष्ण का भजन करते हैं , वे ही सर्वोपरि हैं।

देवी देवताओं व शास्त्रों की निंदा न करके जो हरिनाम का आश्रय लेते हैं , वे ही साधु हैं

शुद्ध साधुजन , अन्य देवों एवम अन्य शास्त्रों की निंदा नहीं

करते , वे तो एकमात्र श्रीकृष्ण नाम का आश्रय लेते हैं। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहने लगे -हे प्रभु!ऐसे हरिनाम का आश्रय लेने वाले साधु चाहे गृहस्थी हों या सन्यासी ,उनके चरणों की धूल को पाने का मैं सदा प्रयास करता रहता हूँ। मेरा तो यह अनुभव है कि जिसकी जितनी हरिनाम में रुचि है , वह उतना ही बड़ा वैष्णव है। इसमें वर्णाश्रम, धन, विद्वता,यौवन, रूप,बल व जन आदि कुछ भी महत्व नहीं रखता। इसलिये जिन्होंने हरिनाम का आश्रय लिया है,उन्हें अवश्य ही साधु निंदा छोड़ देनी चाहिए। श्रीहरिनाम का आश्रय रूपी शुद्ध भक्ति का आश्रय लेने वाले भक्त ही शुद्ध भक्त हैं।

भक्त के द्वारा भक्ति को छोड़ने से वह अभक्त हो जाता है।जहां साधु निंदा होती है , वहां भक्ति नहीं रहती। वह स्थान तो अपराध के स्थान में बदल जाता है।अतः साधकों को चाहिए कि वे साधु निंदा को छोड़कर , साधु भक्त की सेवा करेंगे। भगवान का भक्त हर समय साधु सँग व साधु सेवा करेगा, यही उसका धर्माचरण है, इसी का वह पालन करेगा।

असत सँग दो प्रकार का है

असत्संग का त्याग करना ही वैष्णवों का आचरण होता है। असत का सँग करने से साधु की बड़ी अवहेलना व अवज्ञा होती है।सभी शास्त्रों में असत दो प्रकार के कहे गए हैं ,उन दो में से एक स्त्री संगी है।स्त्री संगी के संगी का सँग करना भी उसी के अंतर्गत है। उसका सँग त्यागने से ही जीवन धन्य हो सकता है।

स्त्री संगी किसे कहते हैं

श्रीकृष्ण को केंद्र मानकर ग्रहस्थ आश्रम में जो दम्पति रहते हैं शास्त्रों में इसे असतसंग या स्त्रीसंगी नहीं कहा गया। अधर्म से स्त्री पुरुष आपस में मिलें हों अथवा शास्त्र अनुसार अपने वर्ण में अग्नि, पुरोहित ,माता पिता व रिश्तेदारों को साक्षी के रूप में रखकर विवाह करके भी जो व्यक्ति बहुत अधिक स्त्री के पराधीन होता है, शास्त्रों में उसे स्त्री संगी कहा गया है।यहां पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस प्रकार पुरुष के लिए अवैध स्त्री सँग व स्त्री में बहुत ज्यादा आसक्ति गलत है।उसी प्रकार स्त्री के लिए भी अवैध पुरुष का सँग अथवा आसक्ति गलत है।

एक और प्रकार का असत सँग होता है वह यह है कि जो श्रीकृष्ण के भक्त नहीं है , ऐसे व्यक्तियों का सँग। अर्थात जो श्रीकृष्ण के भक्त नहीं है ऐसे अभक्त लोगों के सँग को भी असत

सँग कहते हैं। ये श्रीकृष्ण अभक्त सँग तीन प्रकार के होते हैं- मायावादी ,धर्मध्वजी तथा निरीश्वरवादी व्यक्तियों का सँग।

जो भगवान के नित्यस्वरूप को स्वीकार नहीं करता, जो श्रीकृष्ण की श्रीमूर्ति को माया की, अर्थात लकड़ी , पत्थर आदि की समझते हैंएवम जीव को भी माया निर्मित तत्व कहते हैं , उन्हें मायावादी कहते हैं।ऐसे लोग जिनके अंदर भक्ति या वैराग्य लेशमात्र नहीं है , केवल अपने दुनियावी स्वार्थों को पूरा करने के लिए कपटता सहित साधु का वेश धारण करते हैं, उन्हें धर्मध्वजी कहा जाता है, तथा जो भगवान को न मानने वाले नास्तिक है उन्हें निरीश्वर वादी कहा जाता है।

इन सबका अर्थात मायावादी, धर्मध्वजी तथा निरीश्वरवादी के सँग का त्याग करने को साधु का अपमान या साधु निंदा नहीं कहते बल्कि जो व्यक्ति इनके सँग का त्याग करने को साधु निंदा कहता है , उसका सँग वर्जनीय है। ऐसे व्यक्तियों के सँग का भी परित्याग कर देना चाहिए। असत सँग को छोड़कर जो श्रीकृष्ण की अनन्य भाव से शरण लेकर श्रीकृष्णनाम करते हैं , वही श्रीकृष्ण के प्रेम धन को प्राप्त करते हैं।

वैष्णव आभास, प्राकृत वैष्णव, वैष्णवप्राय और कनिष्ठ वैष्णव -यह सभी प्रर्यायवाची शब्द हैं

जिनकी साधु सेवा में रुचि नहीं है किंतु जो लौकिक श्रद्धा से श्रीमूर्ति का अर्चन करते हैं , ऐसे वैष्णवों को प्राकृत वैष्णव कहते हैं।ये वैष्णव वास्तविक वैष्णव नहीं होते।ये वैष्णवों की तरह ही होते हैं,वैष्णव आभास कहा जा सकता है-ऐसे वैष्णवों को।यही कारण है कि इनकी गिनती कनिष्ठ वैष्णवों में होती है।ऐसों पर श्रेष्ठ वैष्णव स्वयम ही कृपा करते हैं।

माध्यम वैष्णव

श्रीकृष्ण में प्रेम ,श्रीकृष्ण भक्तों से मित्रता,बालिश पर कृपा एवम द्वेषी की उपेक्षा ,ये चार गुण मध्यम भक्त में होते हैं। मध्यम भक्त ही शुद्ध भक्त है। ऐसे भक्त श्रीकृष्ण नाम करने का अधिकार प्राप्त कर लेते हैं।

उत्तम भक्त

जिन्हें सर्वत्र ही श्रीकृष्ण दर्शन होता है, जो सभी प्राणियों में श्रीकृष्ण का दर्शन करते हैं , श्रीकृष्ण ही जिनके प्राणधन हैं , जो वैष्णव तथा अवैष्णव में भेद नहीं देखते , वे ही उत्तम वैष्णव है। श्रीकृष्ण नाम ही उनका सार सर्वस्व होता है।

मध्यम वैष्णव ही साधु सेवा करते हैं

इसलिए मध्यम वैष्णव हर समय साधु सेवा में रत्त रहते हैं।

प्राकृत -वैष्णव नामाभास के अधिकारी हैं

प्राकृत वैष्णव,या वैष्णव प्रायः या कनिष्ठ वैष्णव ही नामाभास के अधिकारी है-शास्त्र ऐसा कहते हैं।

मध्यम वैष्णव ही नाम के अधिकारी है तथा वे ही नाम भजन में होने वाले अपराधों पर विचार करते हैं

मध्यम वैष्णव ही एकमात्र हरिनाम के अधिकारी हैं तथा वे ही नाम भजन में अपराध का विचार करते हैं।वैष्णव के अपराध की संभावना नहीं रहती क्योंकि वे सर्वत्र ही श्रीकृष्ण का वैभव देखते हैं। अपने अपने अधिकारों का विचार करके साधु निंदा

छोड़नी चाहिए। साधु सँग, साधु सेवा,श्रीनाम संकीर्तन तथा सभी जीवों पर दया करना ही भक्तों का आचरण है।

साधु निंदा होने पर क्या करना चाहिए

असावधानी वश यदि अचानक के कभी साधु निंदा हो जाये, तब प्रायश्चित के साथ, उस साधु के चरणों को पकड़ लेना चाहिए तथा उनके चरणों मे पड़कर रोते रोते कहना चाहिए- प्रभु!मेरा अपराध क्षमा करो।हे वैष्णव! इस दुष्ट निंदक पर कृपा करो।इतना करने मात्र से वह तुम्हें क्षमा कर देंगे तथा कृपा पूर्वक तुम्हारा आलिंगन कर लेंगे।

भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिदास ठाकुर जी के पादपदमों के जो भौरे हैं , श्रीहरिनाम चिंतामणि ही उनका जीवन है।

चतुर्थ अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 10

अध्याय 5

अन्य देवी देवताओं को श्रीकृष्ण से अलग समझना अपराध है

शिवस्य श्रीविश्नोर्य इह गुणनामादि सकलं

धिया भिन्न पश्येत स खलु हरिनामहितकरः

श्रीगदाधर पंडित जी कर प्राण श्रीगौरांग महाप्रभु जी,श्रीमति जान्ह्वी देवी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की जय हो। सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि भक्तों की जय हो।

श्रीहरिदास जी हाथ जोड़कर कहने लगे -हे जगन्नाथ श्रीगौरसुन्दर अब दूसरा अपराध सुनिए।

परम् अद्वयज्ञान श्रीविष्णु ही,परमतत्व हैं।वे चित्स्वरूप हैं,जगदीश हैं एवं सदा शुद्धसत्व स्वरूप हैं।उस पर तत्व के सार हैं अर्थात गोलोक विहारी श्रीकृष्ण श्रेष्ठ तत्व हैं । ये श्रीकृष्ण ही 64 गुणों से अलंकृत एवं सभी रसों के आधार हैं।60 गुण भगवान श्रीनारायण जी रूप में प्रकाशित हैं । ये 60 गुण ही श्रीविष्णु जी में सामान्य रूप से विलास करते हैं। पुरुषावतार एवं स्वांश अवतारों में ये 60 गुण उनके कार्य अनुसार स्पष्ट रूप से झलकते है।

श्रीविष्णु के विभिन्न अंशों का प्रकाश

श्रीविष्णु के विभिन्न अंश दो प्रकार के हैं-साधारण जीव एवं देवता।जीव में भगवान के ही 50 गुण बिंदु बिंदु रूप से विद्यमान हैं जबकि शिव आदि देवताओं में यह 50 गुण ही कुछ अधिक मात्रा में रहते हैं।इसके अतिरिक्त इन देवताओं में 5 और गुण आंशिक रूप से विद्यमान होते हैं जो कि पूर्णमात्रा में केवल श्रीविष्णु जी मे ही विद्यमान होते हैं।

60 गुण से श्रीविष्णु परम् तत्व ईश्वर हैं

उक्त 55 गुण श्रीविष्णु जी में पूर्ण रूप से विराजमान हैं, इसके इलावा और 5 गुण श्रीविष्णु में पूर्ण रूप से हैं किंतु शिव आदि देवता तथा जीव में यह गुण नहीं। इन 60 गुणों से ही श्रीविष्णु तत्व सभी ईश्वरों के ईश्वर अर्थात परम् ईश्वर हैं।अतः शिव आदि अन्य देवी देवता , भगवान विष्णु जी के दास दासियाँ हैं।विष्णु जी के विभिन्न अंश ये देवता श्रेष्ठतर जीव हैं , कहने का तातपर्य यह है कि भगवान विष्णु ही सभी देवताओं तथा सभी जीवों के ईश्वर हैं,इसलिए उन्हें सर्वेश्वर अथवा सर्वदेवेश्वर कहते हैं।

अज्ञानी व्यक्ति देवी देवताओं को विष्णु के समान समझते हैं

सचमुच ही वे बड़े अज्ञानी हैं जो अन्य देवी देवताओं के साथ श्रीविष्णु जी को समान मानते हैं।ऐसे मानने वालों को ईश्वर तत्व का ज्ञान नहीं है।इस जड़ जगत में श्रीविष्णु ही परम ईश्वर हैं , शिव आदि देवता सब उनके आधीन व उनके किंकर हैं। कोई कहता है कि माया के तीन गुणों को लेकर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश तीनों ही सविशेष देवता हैं ,जबकि हमेशा एक सा रहने वाला ब्रह्मा तो निर्विशेष होता है। यह मायावादियों का मत है जो कि गलत है।

विभिन्न वादों के सिद्धांत

शास्त्रों के अनुसार श्रीनारायण ही सर्व पूज्य है, जबकि ब्रह्मा ,शिव आदि तो इस संसार की सृष्टि तथा प्रलय का कार्य करने के लिए हैं। वासुदेव भगवान श्रीकृष्ण को छोड़कर जो और और देवताओं का भजन करते हैं ,वे ईश्वर को छोड़ संसार में ही फंसे रहते हैं।कोई कहता है कि यह ठीक है कि श्रीविष्णु तत्व ही परम तत्व हैं , यह वेद वाणी है। इसे मैं मानता हूं परन्तु यह सारा विश्व ही विष्णुमय है इसलिए वेद के इस सिद्धांत के अनुसार सब देवताओं में ही श्रीविष्णु का अधिष्ठान है,अतः सभी देवताओं का अर्चन होने से वह श्रीविष्णु का ही सम्मान होता है।यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपरोक्त शास्त्र सिद्धान्त है परंतु यह विधि का सिद्धांत नहीं है।ये तो निषेध का सिद्धांत है अर्थात सारा विश्व विष्णुमय होता है या सभी देवताओं में विष्णु का अधिष्ठान होता है-इसका मतलब यह नहीं है कि किसी भी देवता की पूजा करने से या सब देवताओं की पूजा करने से भगवान विष्णु की पूजा हो जाती है। इस शास्त्र वाक्य का तातपर्य है कि भगवान विष्णु की पूजा करने से सभी देवी देवताओं की पूजा हो जाती है। ठीक उसी प्रकार जैसे वृक्ष

की जड़ को सींचने से उसके तने, उसकी टहनियों ,शाखाओं आदि का पोषण हो जाता है अर्थात सभी को पानी मिल जाता है।जबकि पत्तों पर पानी डालने से वृक्ष सूख जाता है तथा उसे पानी नहीं मिलता है। इसलिए अन्य देवी देवताओं की पूजा त्यागकर , श्रीविष्णु जी की पूजा करनी चाहिए,इससे अन्य देवताओं की पूजा तो अपने आप हो जाती है।प्राचीन काल मे ,वेद सम्मत यह विधि ही चली आ रही थी , किंतु दुर्भाग्यवश कुछ मूढ़ व्यक्तियों ने यह विधि छोड़ दी । मायावाद के दोष से तथा कलियुग के आने से लोग भगवान विष्णु को अन्य देवी देवताओं के समान जानकर अन्य सभी देवी देवताओं की पूजा करने लग पड़े हैं। एक एक देवता , एक एक फल को देने वाला है , किंतु श्रीविष्णु सर्वफलदाता एवं सबके पालक हैं। सकामी व्यक्ति भी यदि इस तत्व को समझ लें तो वे भगवान श्रीविष्णु की पूजा करके अपने अपने फलों को पाते हैं , एवं अन्य देवी देवताओं की पूजा छोड़ देते हैं।

ग्रहस्थ वैष्णवों के कर्तव्य

ग्रहस्थ होकर जो , जो श्रीविष्णु भक्त होता है वह संशय त्यागकर हर परिस्थिति में श्रीकृष्ण की पूजा करता है, जन्म से मरने तक जितने भी संस्कार हैं , ग्रहस्थ व्यक्ति उन सभी में वेद

मंत्रों के अनुसार श्रीकृष्ण की पूजा करेंगे। भगवान विष्णु व वैष्णवों की पूजा का देवी देवताओं व चितगणों को श्रीकृष्ण का प्रसाद देने का , वेद में विधान है। मायावादियों के मत अनुसार जो व्यक्ति पित्रश्राद्ध एवं अन्य देवताओं की पूजा करते हैं , वे अपराधी हैं तथा इस अपराध के कारण उनकी दुर्गति होती है। जैसे विष्णु जी एक ईश्वर हैं , उसी प्रकार शिव जी आदि भी अलग अलग ईश्वर हैं -विष्णुतत्व में इस प्रकार की भेद बुद्धि करना भी एक प्रकार का भयंकर नाम अपराध है। भगवान विष्णु की शक्ति पराशक्ति है, इसी से सभी देवता आये हैं । वेदों के अनुसार भगवान की शक्ति के अतिरिक्त कोई और शक्ति नहीं है। शक्ति को कभी शक्तिमान से अलग नहीं किया जा सकता यह वेद का सम्मत है। शिव जी, ब्रह्मा जी, गणेश जी तथा सूर्य व अलग अलग दिशाओं के देवता हमेशा से ही श्रीकृष्ण के द्वारा शक्ति प्रदान करने पर कुछ सामर्थ्य रखते हैं। हरिदास जी कहते हैं कि इन्हें ईश्वर कहा जा सकता है परंतु मैं समझता हूं कि परमेश्वर एक है तथा जितने भी देवी देवता हैं ,सब इन्हीं परमेश्वर की शक्ति हैं।ग्रहस्थ भक्त भक्ति के सद्भाव को ग्रहण करेंगे।

वैष्णव लोग किस तरह से वैष्णव धर्म पालन करेंगे

भगवान की भक्ति के सद भावों में रहकर भगवान की भक्ति की विभिन्न क्रियाओं को करते रहना चाहिए तथा देवताओं व अपने पितरों की प्रसन्नता के लिए उन्हें भगवान का प्रसाद निवेदन करना चाहिए।बहुत से देवी देवताओं की पूजा नहीं करनी चाहिए। सभी देवता भगवान कृष्ण के दास तथा दासियाँ हैं, यह जानकर केवल श्रीकृष्ण का ही भजन करते रहना चाहिए और यह भावना हृदय में रखनी चाहिए कि इस कृष्ण भजन के द्वारा सभी देवी देवताओं की प्रसन्नता हो रही है। जीव,भगवान श्रीकृष्ण की पूजा व वैष्णवों की सेवा से सर्वसिद्धि प्राप्त कर लेता है, साथ ही इससे साधक का नाम अपराध भी नहीं होता है।हर समय उसके मुख से श्रीकृष्ण नाम निकलता रहता है या वह हर समय श्रीकृष्ण का नाम गाता रहता है।

चारो वर्णों की जीवनयात्रा की विधि

मनुष्य को चाहिए कि इस संसार मे वह अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र आदि वर्णों तथा ब्रह्मचर्य , ग्रहस्थ, वानप्रस्थ आदि आश्रमों के अनुसार आचरण करे। अपने अपने वर्ण व आश्रम के नियमों का पालन करते हुए अपनी देह यात्रा को चलाना भी सनातन धर्म कहलाता है क्योंकि यह क्रियाएं साधक को

सनातन धर्म अर्थात आत्म धर्म की ओर ले जाती हैं।क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 11

अध्याय 5

अन्त्यज लोगों की जीवन यात्रा विधि

ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णों से अलग वर्णसंकर (जहां स्त्री उच्च वर्ण की तथा पुरुष निम्न वर्ण का हो , ऐसे विवाह को प्रतिलोग विवाह कहते हैं तथा इस प्रकार के वैवाहिक जीवन से उतपन्न सन्तान को वर्णसंकर कहते हैं)तथा अन्त्यज जाति के लोग अपनी जीवन यात्रा को चलाने के लिए अपने नीच कार्यों को छोड़कर शुद्र के नियमों का पालन करेंगे । ऐसा इसलिए क्योंकि इस संसार मे चार वर्णों को छोड़कर ऐसा कोई भी वर्ण नहीं है जिसका वे पालन कर सकें।

संसारी व्यक्ति अपनी जीवन यात्रा में अपने अपने वर्ण के धर्मो का पालन करें

ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य व शुद्र अपने वर्ण धर्म का पालन करते हुए शुद्ध श्रीकृष्ण भक्ति का आचरण करेंगे। ब्राह्मण,क्षत्रिय वैश्य, शुद्र व ब्रह्मचारी , ग्रहस्थ , वानप्रस्थ और सन्यासी -ये चारों वर्णाश्रमी अपने आश्रम और वर्ण का पालन करते हुए भी यदि कृष्ण भजन नहीं करते हैं , तब उन्हें रौरव नरक में जाना पड़ेगा। ग्रहस्थ अपने वर्ण धर्म का आचरण करते हुए जिससे जीवन यात्रा निर्वाह हो सके, उतना कमाते हुए श्रीकृष्ण का भजन करेंगें। संसार के विषयों से जब तक किसी का स्वाभाविक वैराग्य न हो जाये तब तक उसे अपने वर्ण तथा आश्रम के नियमों का पालन करना चाहिए। भक्ति योग में इसी तत्व को समझाया गया है। शास्त्रों में कहा गया है कि भक्तियोग ही हमारे हृदय में भगवत भावों का उदय करवाएगा जिसके द्वारा सांसारिक नियमो के प्रति हमारी प्रवृति स्वाभाविक ही खत्म हो जाएगी अर्थात हरिभजन करते करते जब जीव के हृदय में भगवत भाव उतपन्न होने लगते हैं तो उसके अंदर सारी भोग प्रवृतियां खत्म हो जाती हैं और उसकी देह यात्रा तो स्वाभाविक रूप से ही चलने लगती है। अपने घर मे, स्त्री में व अपने शरीर सम्बन्धियों में आसक्त वैष्णवों को भक्तियोग रूपी

अद्वितीय साधना को करना चाहिए। इस प्रकार की विष्णु भक्ति के द्वारा ही जीव का संसार के प्रति मैं और मेरा का झूठा भाव समाप्त हो जाता है। *भगवान के नाम और नामी अर्थात भगवान में कोई अंतर नहीं होता*

भेद बुद्धि के निवारण के लिए एक बात और भी है कि भगवान विष्णु का नाम, उनके रूप , उनके गुण में कोई अंतर नहीं है , इन्हें श्रीविष्णु से कभी पृथक नहीं मानना चाहिए। श्रीविष्णु तत्व अपने आप में चिन्मय हैं, अखंड हैं तथा विभु हैं। विष्णु तत्व से न तो कोई बड़ा है और न ही उसके बराबर है। अज्ञानता से भी यदि विष्णु के नाम, रूप, गुण आदि में भेद बुद्धि हो जाये अर्थात कोई भगवान को उनके नाम से अलग समझे , तो ऐसे जीव के लिए भगवत प्रेम की प्राप्ति असम्भव है। हाँ , ऐसी स्थिति में उसका नामाभास हो सकता है। सद्गुरु की कृपा से यदि उसकी भेदबुद्धि रूपी अनर्थ खत्म हो जाएं तो उसके हृदय में शुद्ध नाम प्रकाशित हो जाएगा।

मायावादियों के कुतर्क एवं अपराध

मायावादियों की शिक्षा के प्रभाव से अगर भगवान विष्णु के नाम, रूप, गुण आदि का भेद प्रकट होता है तो इससे श्रीकृष्ण के चरणों मे अपराध होता है। ऐसे अपराधों से कभी निवृति

नहीं मिलती है। मायावादी कहते हैं कि -निरविशेष ,निर्विकार तथा निराकार ब्रह्म ही परतत्व है। मायावादियों का कहना है कि शून्यवाद ही सत्य है, बाकी सब केवल कुतर्क ही है। भगवान के नाम , उनका रूप आदि सब माया में ही कल्पित हैं। अर्थात अभी भगवान का जो स्वरूप आप देख रहे हो यह माया से बना है,जैसे ही माया हट जाएगी भगवान विष्णु निराकार ब्रह्म बन जाते हैं।परतत्व भगवान को सर्वशक्तिमान न मानना अर्थात परतत्व में सर्वशक्ति को न मानना ही प्रमाद है।जबकि यह सत्य है कि जो शक्तिमान ब्रह्मा हैं वही भगवान विष्णु हैं , सिर्फ नाम का ही अंतर है, यही वेदों का निर्णय है।

विष्णु और ब्रह्म तत्व में सम्बन्ध

भगवान विष्णु ही परतत्व हैं एवम सविशेष हैं। किंतु ज्ञान मार्गीय साधन से वह भगवान को निर्विशेष के रूप में अनुभव करते हैं। भगवान की अचिन्त्य शक्ति ही विचारों के इस विरोध का नाश करती है तथा साधक के हृदय में भगवान के प्रति एक सुंदर छवि को स्थापित करती है। जीवों की बुद्धि , स्वाभाविक ही अल्पकर है इसलिए वह परमेश्वर की अचिन्त्य शक्ति के भाव को ग्रहण करने में असमर्थ रहती हैं । अपनी बुद्धि से ईश्वर को स्थापन करने की कोशिश खण्डज्ञान होने के कारण ब्रह्मतत्व

को भी छोटा कर देती है। मायावादी लोग तमाम देवताओं द्वारा आराधित भगवान विष्णु के परमपद को छोड़कर,एक कल्पित ब्रह्म में उलझकर भृमित से हो जाते हैं तथा अपना हित व अहित भी नहीं समझते। आत्मा के स्वरूपज्ञान को जो समझते हैं अर्थात जिन्हें अपने चिन्मय रूप का ज्ञान है , वे भगवान के रूप , गुण आदि को भगवान से अभिन्न मानते हैं। यही श्रीकृष्ण स्वरूप का विशुद्ध ज्ञान है, ये विशुद्ध ज्ञान श्रीकृष्ण से नित्य सम्बन्ध को जान लेने पर ही हो सकता है और ऐसा होने पर जीव , भगवान की हरिनाम के स्मरण व कीर्तन रूपी भक्ति को करता है।

शिव और विष्णुतत्व में अभेदबुद्धि

जड़ीय अर्थात दुनियावी नाम, रूप व गुण में जो भेद होता है , चिन्मयतत्व में वैसा भेद नहीं है। चिन्मयतत्व की यही तो विशेषता है । श्रीविष्णुतत्व में भेद ज्ञान ही अनर्थ है। शिव आदि देवताओं को भगवान से स्वतंत्र समझना बिल्कुल गलत है।

भक्त और मायावादी के आचरण

जिन भक्तों ने भगवान श्रीकृष्ण के नाम की शरण ले ली है वे

अन्य देवता को छोड़कर एकमात्र श्रीकृष्ण का ही भजन करते हैं। हाँ, वे अन्य देवताओं व अन्य शास्त्रों की निंदा नहीं करते बल्कि वे तो सभी देवताओं को श्रीकृष्ण का दास मानकर उनका आदर करते हैं। ग्रहस्थ भक्त भगवान का प्रसाद अपने पितरों तथा देवी देवताओं को अर्पित करके उन्हें प्रसन्न करते हैं।वैष्णव लोग जहां जहां भी किसी देवी देवता का दर्शन करते हैं उन्हें श्रीकृष्ण का दास मानकर ही प्रणाम करते हैं।मायावादी लोग यदि भगवान की पूजा करते हैं , तो वैष्णव लोग उनका दिया प्रसाद इस भय से नहीं लेते क्योंकि उन्हें मालूम है कि मायावादी श्रीहरिनाम के चरणों मे अपराधी होते हैं तथा उनके द्वारा की गई पूजा भी श्रीहरि ग्रहण नहीं करते हैं। और और देवी देवताओं का प्रसाद नहीं लेना चाहिए, देवी देवताओं का प्रसाद लेने से अपराध होता है जो शुद्धभक्ति की साधना में हानि पहुचाता है। भक्त श्रीकृष्ण की पूजा करके उनका प्रसाद अन्य देवी देवताओं को अर्पित करते हैं । देवी देवताओं को दिया हुआ श्रीकृष्ण का प्रसाद लेने से अपराध नहीं होता तथा इस प्रकार देवी देवताओं का प्रसाद लेना हरिभक्ति में बाधक नहीं होता । शुद्ध भक्त श्रीहरिनाम के चरणों मे अपराधी नहीं होते हैं । वे हरिनाम संकीर्तन करके भगवत प्रेम प्राप्त करते हैं तथा हमेशा हरिनाम की जय जयकार करते हैं।

अपराध की प्रतिक्रिया

प्रमाद से यदि किसी और में विष्णु ज्ञान हो जाये, तब अनुताप करके, विष्णुतत्व का स्मरण करके , फिर से अपराध न हो इसके लिए सावधान रहना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण भक्तों के बांधव हैं , दया के सागर हैं। भगवान श्रीकृष्ण क्षमा के समुद्र हैं इसलिए वह अपने भक्तों के पहले किये हुए दोषों को क्षमा कर देते हैं। बहुत से देवी देवताओं की सेवा करने वाले का सँग त्याग देना चाहिए तथा अनन्य भाव से भगवान की सेवा करने वाले वैष्णव की सेवा पूजा करनी चाहिए। श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि जो लोग नामाचार्य श्रीहरीदास ठाकुर जी के चरणों में शरणागत होंगें , ये हरिनाम चिंतामणि उनका जीवन स्वरूप होगा।

पंचम अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 12

अध्याय 6

गुरु अवज्ञा

भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु ,श्रीमन नित्यानन्द प्रभु, श्रीगदाधर पंडित व श्रीवास पंडित पंचतत्व की जय हो, श्रीराधामाधव की जय हो। श्रीनवद्वीप धाम , श्रीब्रजधाम, श्रीयमुना जी और सभी वैष्णव की जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर जी निवेदन करते हुए श्रीमन महाप्रभु जी से कहने लगे-हे प्रभु! अब मैं आपकी आज्ञा अनुसार तीसरे अपराध गुरुअवज्ञा के बारे में विस्तार से कहूंगा कि यह कैसे घटित होता है तथा जीवन मे किस प्रकार गुरुअवज्ञा होती है।

अनेक योनियों में भृमण करने के बाद जीव को यह मनुष्य शरीर मिलता है जो अति दुर्लभ तथा मंगल प्रदान करने वाला है।जितनी भी लम्बी अवधि को यह शरीर मिले , परन्तु होता यह अनित्य ही है। मानव शरीर को धारण करने पर भी जब कोई भजन न करे तो उसे इस मानव देह को त्याग कर फिर से अनित्य संसार मे जन्म लेना और मरना पड़ता है।

संसारी जीव को अवश्य गुरु का आश्रय ग्रहण करना चाहिए

बुद्धिमान व्यक्ति जन्म मृत्य रूपी इस संसार मे दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर शांत स्वभाव से श्रीकृष्ण भजन का गुरु रूप में आश्रय ग्रहण करता है तथा अपने विनम्र वचनों से उन्हें प्रसन्न करता है । भवसागर से पार जाने के लिए सद्गुरु रूपी मल्लाह से वह श्रीकृष्ण नाम की दीक्षा प्राप्त करके , प्रीतिपूर्वक श्रीकृष्ण का भजन करते हुए भवसागर से पार हो जाता है। वैसे तो स्वाभाविक रूप से जीव की श्रीकृष्ण में रति मति होती है परंतु ज्यादा तर्क आदि करने से यह प्रीति नष्ट हो जाती है। इसलिए तर्क को छोड़ जब कोई सुमति का आश्रय ले लेता है तो वह सद्गुरु चरण आश्रय ले लेता है तथा उनसे गुरुमंत्र प्राप्त करता है।शरीर मे आसक्त अथवा विषयों में आसक्त जीव को चाहिए कि वह अपने अपने वर्ण तथा आश्रम के नियमों का पालन करते हुए सद्गुरु के चरणों का आश्रय ग्रहण करे।

ब्राह्मण आदि उच्च वर्ण में सत्पात्र होने पर वह गुरु होने योग्य है

ब्राह्मण यदि श्रीकृष्ण भक्त है तो वह सभी वर्णों का गुरु हो सकता है परन्तु यदि ब्रह्ममण कुल में ऐसा सुपात्र न मिले तो अन्य कुल में उतपन्न व्यक्ति से भी दीक्षा ग्रहण की जा सकती

है। दीक्षा देने या लेने से पहले गुरु को शिष्य की व शिष्य को गुरु की भली भांति परीक्षा कर लेनी चाहिए । जहां तक सम्भव हो, उच्चवर्ण के गुरु से ही दीक्षा लेनी चाहिए।

वर्ण विचार की अपेक्षा सुपात्र विचार करना अधिक उचित है

जो कृष्ण तत्व को भली भांति समझता है , वही वास्तविक गुरु हो सकता है, चाहे वह ब्राह्मण हो , शुद्र हो , गृहस्थी हो अथवा सन्यासी हो। सद्गुरु तो तमाम इच्छाओं को पूर्ण करने वाले कल्पतरु वृक्ष के समान होते हैं। यदि हमें श्रीकृष्ण प्रेम प्राप्त करना है तो सद्गुरु के वर्ण की ओर ध्यान न देकर उनकी कृष्ण भक्ति देखनी चाहिए क्योंकि परमार्थ के मार्ग में केवलमात्र उच्च वर्ण की मर्यादा देना उचित नहीं है । शुद्ध सोने की तरह सुपात्र की प्राप्ति करना अर्थात सद्गुरु की प्राप्ति करना ही मूल प्रयोजन है। अगर कोई गुरु , सुपात्र होने के साथ साथ उच्च वर्ण का भी हो तो यह सोने पर सुहागे के समान है।

गृहत्यागी , गृहत्यागी गुरु का आश्रय कर सकता है

यदि किसी भी कारणवश कोई जीव ग्रहस्थ आश्रम का परित्याग करके अन्य आश्रम को ग्रहण करता है तो उसके ऐसा करने मात्र से ही उसकी परमार्थिक उन्नति न होगी । परमार्थिक उन्नति प्राप्त करने के लिए उसे सद्गुरु का आश्रय ग्रहण करना

पड़ेगा । गृहत्यागी व्यक्ति को गृहत्यागी गुरु का आश्रय ग्रहण करना ही उचित है। उनसे शिक्षा दीक्षा ग्रहण करके वह श्रीकृष्ण का नाम रसास्वादन कर सकता है।

ग्रहस्थ व्यक्ति को अपना ग्रहस्थाश्रम छोड़ने पर भी अपने पूर्व सद्गुरु का चरणाश्रय नहीं छोड़ना चाहिए

ग्रहस्थ व्यक्ति को वैराग्य प्राप्त करके संसार छोड़ देने पर भी अपने पूर्व सद्गुरु का चरणाश्रय जीवन के अंतिम क्षणों तक नहीं छोड़ना चाहिए। ग्रहस्थ व्यक्ति ग्रहस्थाश्रम के सद्गुरु का चरणाश्रय ग्रहण कर सकते हैं यदि वह शुद्ध श्रीकृष्ण भक्त हों तो, अन्यथा उसे सुयोग्य त्यागी सद्गुरु के चरणों का आश्रय ग्रहण करना चाहिए । सद्गुरु को प्राप्त करके हरिभजन करते करते हृदय में जब भगवत भावों का उदय होता है तो स्वाभाविक रूप से वह संसार परित्याग करने से वह वैरागी भक्त बन जाता है।

जो वैराग्य आश्रम ग्रहण करेंगे , वे वैरागी सद्गुरु का चरणाश्रय ग्रहण करेंगे

वैराग्याश्रम ग्रहण कर लेने के बाद उस व्यक्ति को चाहिए कि वह वैरागी गुरु का ही चरणाश्रय ग्रहण करे क्योंकि वैरागी गुरु के चरणों का आश्रय ग्रहण करने से उसे वैराग्य की शिक्षा प्राप्त होगी । शिक्षा देने के लिए तो गुरु कल्पतरु के समान होते हैं जो

कि विभिन्न प्रकार की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

दीक्षा और शिक्षा गुरु समान रूप से सम्माननीय हैं

शिक्षा और दीक्षा के भेद से गुरु दो प्रकार के होते हैं । अतः जो व्यक्ति अनायास उस परमार्थ धन को प्राप्त करना चाहते हैं , वे शिक्षा गुरु तथा दीक्षा गुरु दोनों को बराबर सम्मान प्रदान करते हैं। दीक्षा गुरु श्रीकृष्णनाम प्रदान करते हैं जबकि शिक्षा गुरु भजन तत्व की शिक्षा देते हैं । सभी वैष्णव , शिक्षा गुरु होते हैं । उनका यथायोग्य सम्मान करना चाहिए।

सम्प्रदाय के आदिगुरु की शिक्षाओं को अवलम्बन करके आचरण करें

वैष्णव सम्प्रदाय के सभी आचार्य, शिक्षा गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हैं किंतु जो आदि आचार्य हैं, वे गुरु शिरोमणि है । उनकी यथोउचित पूजा करनी चाहिए। इधर उधर की बातें न सुनकर आदि आचार्यों का ही अनुसरण करना चाहिए एवं बड़े यत्न के साथ उनके आदेशों का पालन करना चाहिए तथा वैष्णव परम्परा से दीक्षा लेनी चाहिए।क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 13

अध्याय 6

वैष्णव सम्प्रदाय के गुरु का वरण करना ही अनिवार्य है

वैष्णव सम्प्रदाय के आचार्य को ही शिक्षा गुरु मानना चाहिए। अन्य मतों के विद्वानों की शिक्षा ग्रहण नहीं करनी चाहिए। वैष्णव सम्प्रदाय के सिद्धांतों में सुशिक्षित एवं चरितवान ही दीक्षा गुरु होने के योग्य है, ऐसा वैष्णव सिद्धांतो का मत है।

मायावादियों से कृष्ण नाम मन्त्र लेने पर परमार्थ नहीं बनता इसलिए शुद्ध भक्त को छोड़ किसी को भी गुरु मत बनाना

मायावादियों से श्रीकृष्ण मन्त्र प्राप्त कर जीव कभी भीपरमार्थ पथ पर अग्रसर नहीं हो सकता। जो व्यक्ति श्रीकृष्ण भक्ति को छोड़कर और और शिक्षा लेते या देते हैं, दोनो ही नरक में जाते हैं।शुद्ध भक्ति को छोड़कर जो अन्य मतवादों की शिक्षा ग्रहण करते हैं , उसका जीवन यूँ ही तर्क वितर्क में बीत जाता है। ऐसे तर्क वितर्क में फंसा जीव भला गुरु कैसे हो सकता है तथा

दूसरों का भला कैसे करेगा।जो स्वयम ही सिद्ध नहीं तथा अमंगलों से घिरा हुआ है, वह दूसरे का मंगल क्या करेगा।चाहे वह किसी भी कुल में उतपन्न क्यों न हो , वह गुरु होने के लिए उपयुक्त नहीं ऐसा शास्त्र कहते हैं।

गुरु तत्व

शिक्षा गुरु तथा दीक्षा गुरु दोनो ही श्रीकृष्ण के दास हैं। तत्व से दोनो ही ब्रजवासी हैं एवं श्रीकृष्ण की शक्ति के प्रकाश हैं।शिष्यों को चाहिए कि वह अपने गुरुदेव को कभी सामान्य जीव न समझे, क्योंकि श्रील गुरुदेव श्रीकृष्ण की शक्ति , श्रीकृष्ण के प्रिय एवं शिष्यों के लिए नित्य सेव्य हैं।शुद्ध वैष्णवों का मत है कि गुरुदेव को साक्षात कृष्ण नहीं समझना चाहिए । गुरुदेव को श्रीकृष्ण समझना शास्त्रीय दृष्टि से अनुचित है।इसे मायावादी मत कहते हैं।अतः गुरुदेव को श्रीकृष्ण की शक्ति तथा श्रीकृष्ण का प्रिय जानकर जो शिष्य सदैव उनकी सेवा करता है , वह गुरु सेवा के प्रभाव से इस संसार से पार हो जाता है।

गुरु पूजा

सबसे पहले गुरु पूजा करनी चाहिए। उसके पश्चात श्रीकृष्ण की

पूजा करनी चाहिए। गुरुपूजा के समय गुरुदेव को श्रीकृष्ण का प्रसाद अर्पित करना चाहिए। अर्थात पूजा के समय पहले तो गुरु पूजा करें तथा गुरु जी से अनुमति लेकर श्रीराधाकृष्ण की पूजा करें। परन्तु भोग लगाते समय भगवान श्रीराधा कृष्ण को अर्पित करें तथा ततपश्चात उनका प्रसाद श्रीगुरुदेव जी को अर्पित करें तथा गुरुदेव जी से आज्ञा लेकर प्रेम के साथ श्रीकृष्ण की पूजा करें तथा श्रील गुरुदेव को स्मरण करते हुए मुख से भगवत नाम का कीर्तन करें।

गुरु के प्रति किस प्रकार की श्रद्धा रखना उचित है

यदि कोई गुरु की अवज्ञा करता है तो उसका अपराध होता है। इस प्रकार के अपराध से उसके भक्ति मार्ग में बाधा उतपन्न होती है। गुरुदेव, श्रीकृष्ण तथा वैष्णवों में समबुद्धि करते हुए अर्थात पूज्य भाव से सेवा करते हुए जो श्रीहरिनाम का आश्रय करते हैं,वे ही शुद्ध भक्त हैं और वे शीघ्र ही भवसागर से पार हो जाते हैं। जो साधक अपने गुरु में दृढ़ श्रद्धा रखते हैं, वे हरिनाम के प्रभाव से श्रीकृष्ण प्रेम रूपी धन को पा लेते हैं।

कौन सी परिस्थिति में गुरु का अथवा शिष्य का त्याग करना चाहिए

दुर्भाग्यवश यदि कभी ऐसा हो कि गुरु असत सँग में पड़ जाए तो असत सँग के प्रभाव से उनकी योग्यताएं खत्म हो जाती हैं। यह ठीक है कि पहले वह एक अच्छे सद्गुरु थे परंतु बाद में नामापराध से उनका ज्ञान नष्ट हो गया। ऐसे में यदि वे वैष्णवों से विद्वेष करके , हरिनाम रूपी श्रेष्ठ भजन छोड़कर , धन दौलत एवं कामिनी के वशीभूत हो जावे तो ऐसे गुरु का त्याग कर देना चाहिए।पुनः श्रीकृष्ण की कृपा से प्राप्त सद्गुरु का चरणाश्रय ग्रहण करके शुद्ध रूप से श्रीहरिनाम करना चाहिए।

इधर सद्गुरु को भी चाहिए कि वह अपने अयोग्य शिक्षक को दण्ड क्योंकि अयोग्य शिष्य को पालते रहने से वह उद्दंड हो जाता है। दूसरी ओर शिष्य को भी चाहिए कि वह अयोग्य गुरु को छोड़ दे अन्यथा अयोग्य गुरु के पास रहने से शिष्य पाखंडी हो जाता है।जब तक गुरु व शिष्य दोनो की योग्यता ठीक रहती है, तब तक दोनो का सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए और उस सम्बन्ध का त्याग नहीं करना चाहिए।

परीक्षा के बाद ही सद्गुरु का वरण करना चाहिए

शुद्ध भक्त की ही गुरु रूप में स्वीकार करे जिससे भविष्य मे कभी भी गुरु को त्याग करने का क्लेश ही न हो। साधक यदि सोच समझकर सद्गुरु का चरणाश्रय ग्रहण करेगा तो उसे

भविष्य में संकट में नहीं पड़ना पड़ेगा।यदि गुरु भक्तिहीन होंगें तो शिष्य भी ऐसे होंगें, इसलिए परीक्षा करने के बाद साधक किसी को सद्गुरु के रूप में स्वीकार करे। सद्गुरु की अवज्ञा करना भयंकर अपराध है । इस अपराध से देवता व मनुष्य सभी नष्ट हो जाते हैं।

गुरु सेवा की प्रक्रिया

गुरुदेव के विश्राम करने वाला बिस्तर, पादुका, वाहन, चरण रखने वाला आसन तथा उनके स्नान के जल का कभी निरादर नहीं करना चाहिए।यहां तक कि कभी उनकी परछाईं को भी नहीं लांघना चाहिए। अपने गुरुदेव के सामने किसी और की पूजा नहीं करनी चाहिए , न ही किसी को दीक्षा देनी चाहिए।गुरुदेव के सामने कभी भी अपना बड़पन्न नहीं दिखाना चाहिए।जहां कहीं भी गुरुदेव के दर्शन हों भूमि पर लेटकर उन्हें दण्डवत करके उनकी वन्दना करनी चाहिए।गुरुदेव का नाम बहुत ही आदरपूर्वक उच्चारण करना चाहिए।गुरुदेव जी की आज्ञा को कभी टालना नहीं चाहिए। गुरु जी को प्रसाद अवश्य ग्रहण करवाना चाहिए।

श्रील गुरुदेव को कभी कड़वे वचन नहीं बोलने चाहिए। श्रुतियाँ कहती हैं कि अति दीनता के साथ गुरु जी के चरणों मे

शरणागत होकर उनको प्रसन्न करने वाला आचरण करना चाहिए।इस प्रकार के आचरण से श्रीकृष्ण संकीर्तन करने पर सर्वसिद्धि होती है तथा भगवानल की प्राप्ति होती है। दुष्ट सँग के प्रभाव से अथवा अप्रमाणिक शास्रों को पढ़कर यदि किसी व्यक्ति से श्रीहरिनाम प्रदान करने वाले गुरुदेव का अनादर हो जाये तो गुरुदेव के पादपदमों में विलाप करते हुए क्षमा प्रार्थना करें।दयालु गुरुदेव उस साधक के नाम अपराध को क्षमा कर उसे शुद्ध श्रीकृष्ण नाम प्रदान करेंगे।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिदास ठाकुर जी की चरण रज ही जिनका भरोसा है , ऐसा तिनके से भी छोटा तुच्छ से तुच्छ जीव श्रीहरिनाम चिंतामणि का गान करता है।

छठा अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 14

अध्याय सात

श्रुति शास्त्र की निंदा

श्रीगदाधर पंडित जी, श्रीगौरसुन्दर प्रभु जी, श्रीमती जान्ह्वी देवी के प्राण स्वरूप --श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की जय हो। श्रीसीतापति अद्वैताचार्य जी एवं श्रीवास आदि भक्तों की जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर जी श्रुति शास्त्रों की निंदा नामक चौथे अपराध के बारे में कहते हैं कि श्रुति शास्त्रों की निंदा करने से भक्ति रस में बाधा उतपन्न होती है।

वेद ही एकमात्र प्रमाण है

श्रुति शास्त्र, वेद , उपनिषद, पुराण -ये सभी श्रीकृष्ण के श्वास से उतपन्न हुए हैं और यह भगवत तत्व निर्णय में प्रामाणिक हैं।विशेष रूप से अप्राकृत तत्व (भगवत तत्व)का जितना भी ज्ञान है , सब वेद सिद्ध है। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि मैं

तो हमेशा इसी में रमा रहता हूँ।जड़ातीत वस्तु जड़ इंद्रियों से दिखाई नहीं दे सकती। श्रीकृष्ण कृपा के बिना कोई भी उस तत्व को नहीं जान सकता है। जन्म से ही मनुष्य करणापाटव , भृम, विप्रलिप्सा तथा प्रमाद यह चार प्रकार के दोष होते हैं। इन दोषों के कारण मनुष्य अप्राकृत ज्ञान को नहीं जान सकता जबकि चारों वेद इन दोषों से रहित हैं।अतः वेद के बिना परमार्थ मार्ग में कोई गति नहीं है। माया में फंसे जीवों पर अति कृपा करते हुए भगवान श्रीकृष्ण ने वेद पुराण आदि का ज्ञान प्रदान किया , जिसे ऋषि मुनियों ने समाधि लगाकर अनुभव एवम लिपिबद्ध किया।

1 करनापाटव-अप्राकृत तत्व को जानने में इंद्रियों में असमर्थता

2 भृम-गलतफहमी

3 विप्रलिप्सा-दूसरों को धोखा देने की एवम स्वयम खाने की प्रवृति

4 प्रमाद -असावधानी

वेदों में से मुख्य दस मूल शिक्षा तथा नो प्रमेय

श्रुति शास्त्रों के माध्यम से हम यह जानते हैं की कर्म और ज्ञान जीव के वास्तविक उद्देश्य को पूरा नहीं करते।केवल मात्र निर्मल

भक्ति ही जीव को उसके जीवन का वास्तविक उद्देश्य प्रदान करती है। माया से मोहित जीव कर्म तथा तूच्छ ज्ञान के चक्कर मे उलझे रहते हैं। भगवान श्रीहरि ने कृपा करके जीवों को कर्म और ज्ञान से ऊपर उठकर शुद्ध भक्ति का अधिकार एवम उसकी शिक्षा प्रदान की क्योंकि शुद्ध भक्ति से ही श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति होती है। भगवान कहते हैं कि वेद तथा नो प्रमेय इसके प्रमाण हैं।वेद जीव को सम्बन्ध, अभिदेय तथा प्रयोजन की शिक्षा देते हैं । यह दस मूल शिक्षा ही तमाम उपदेशों का सार है।इस दशमूल शिक्षा से अविद्या का नाश होता है तथा यह दश मूल शिक्षा जीव के हृदय में आध्यात्मिक विद्या का प्रकाश करती है।

दस मूल तत्व

(क) वेद वाक्य ही एकमात्र प्रमाण हैं

1 श्रीहरि ही परम तत्व हैं

2 भगवान श्रीहरि सर्व शक्तिमान हैं। वे श्याम सुंदर हैं।

3 भगवान श्याम सुंदर जी परम् रसमय हैं

4जीव संख्या में अनन्त हैं , सभी चेतन परमाणु हैं तथा नित्य बद्ध तथा नित्य मुक्त की दृष्टि से जीव दो प्रकार के होते हैं परंतु सभी जीव श्रीकृष्ण के विभिन्न अंश हैं

5 श्रीकृष्ण से विमुख जीव मायाबद्ध होते हैं

6 जबकि शुद्ध भक्त लोग माया से मुक्त होते हैं

7 सभी जीव और ये सारा जड़ जगत भगवान की अचिन्त्य शक्ति से प्रकट हुआ है जिनका भगवान से अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध है।

8 श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति ही जीवों का अभिदेय अर्थात जीवों की साधना है।

9 श्रीकृष्ण प्रेम ही जीवों की साधना का प्रयोजन है।

श्रीहरि ही एकमात्र परतत्व हैं , सर्वशक्तिमान हैं तथा रस मूर्ति हैं

सबसे पहली शिक्षा यह है कि परम् तत्व एक है और वे श्रीहरि हैं । श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान तथा आनन्द की घनीभूत मूर्ति हैं। श्रीकृष्ण अपने धाम में नित्य विराजित रहते हैं तथा जीवों को परमानंद प्रदान करते हैं। वेद शास्त्र जीवों के हृदय में प्रकाशित होकर श्रीकृष्ण से सम्बंधित इन्हीं प्रमेयों की शिक्षा देते हैं।

जीव तत्व

जीव तत्व के विषय मे अगली शिक्षा यह है कि जीव भगवान की शक्ति के विभिन्न अंश हैं तथा संख्या में अनन्त हैं। यह जीव कोई जड़ीय वस्तु नहीं है बल्कि यह तो चेतन का एक परमाणु कण है।

नित्य बद्ध तथा नित्य मुक्त के भेद से जीव दो प्रकार के हैं

नित्य बद्ध तथा नित्य मुक्त के भेद से जीव दो प्रकार के हैं । इस ब्रह्मांड में जहां तहां जीव भरे पड़े हैं । श्रीकृष्ण से विमुख मायाबद्ध जीव अनन्त ब्रह्मांडों में दुख सुख का भोग करते रहते हैं , जबकि नित्य मुक्त जीव वैकुंठ में श्रीकृष्ण का भजन करते हुए पार्षद के रूप में भगवत सम्पदा का रसास्वादन करते हैं। जीवों के विषय में श्रुति शास्त्र इन तीन प्रमेयों के रूप में शिक्षा प्रदान करते हैं।

अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध

श्रुति शास्त्र कहते हैं कि चित्त तथा अचित्त जगत अर्थात जीव तथा तमाम जड़ वस्तुएं श्रीकृष्ण की शक्ति से उतपन्न हुई हैं वे सभी श्रीकृष्ण शक्तिमय हैं। इन सभी का श्रीकृष्ण से भेदाभेद सम्बन्ध है। अचिन्त्य भेदाभेद ज्ञान के द्वारा ही जीव को यह मालूम पड़ता है किवह श्रीकृष्ण का नित्य दास है तथा श्रीकृष्ण ही उसके नित्य प्रभु हैं।वह श्रीकृष्ण रूपी चिन्मय सूर्य की

किरणों का एक छोटा सा परमाणु मात्र है । शक्ति परिमाणवाद ही वेद शास्त्रों का मत है। विवर्तवाद अर्थात एक वस्तु में दूसरी वस्तु के भृम होने का नाम विवर्त है जोकि नितान्त वेद विरुद्ध है।

यहां तक जिन सात प्रमेयों को बताया गया हैसभी सम्बन्ध ज्ञान से सम्बंधित हैं। सभी श्रुति शास्त्र इनके बारे में अति कल्याणकारी उपदेश प्रदान करते हैं। सम्बन्ध ज्ञान के बाद अभिदेय ज्ञान की शिक्षा देते हैं ,जो कि चिन्मय नवधा कृष्ण भक्ति तथा रागानुगा भक्ति है।क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 15

अध्याय 7

अभिदेय नवधा भक्ति

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पूजन, वन्दन, पादसेवन, दास्य, सख्य तथा आत्मनिवेदन इस नवधा भक्ति में श्रीनाम संकीर्तन ही सर्वशिरोमणि है। वेदों में भी भगवान के नाम प्रणव ॐ की विशेष महिमा गाई गई है।

प्रयोजन कृष्ण प्रेम

मानव शुद्ध भक्ति का आश्रय लेकर श्रीकृष्ण कृपा के प्रभाव से भगवत प्रेम प्राप्त करता है।

इस प्रकार की शिक्षा देने वाले श्रुति शास्त्रों की निंदा करना अपराध है

यह नो प्रमेय वेदों में वर्णित होने के कारण पूर्ण रूप से प्रमाणिक हैं । सद्गुरु इन नो प्रमेयों को भली भांति समझते हैं तथा अपने शिष्यों को समझाते हैं। इस प्रकार के श्रुति शास्त्रों की जो निंदा करता है वह जीव नाम अपराधी तथा नराधम है।

वेद विरुद्ध वाद

जैमिनी, कपिल, नगन, नास्तिक, सुगत तथा गौतम ये छः व्यक्ति हेतुवाद से ग्रस्त हैं। जैमिनी मुख से तो वेदों को मानते हैं परन्तु ईश्वर को नहीं मानते। उनका कहना है कि कर्मकांड ही श्रेष्ठ है।

कपिल की कल्पना में ईश्वर असिद्ध हैं, काल्पनिक है परंतु फिर भी उन्होंने योगमार्ग की शिक्षा दी है।उसका तातपर्य क्या है समझ में नहीं आता है। नगन ने तामस तंत्र का विस्तार करके वेद विरुद्ध धर्म का प्रचार किया। नास्तिक चावराक तो कभी भी वेद को नहीं मानते । सुगत तो बौद्ध धर्म का पालन करते हैं , वे हलग की तरह व्याख्या करते हैं । न्याय दर्शन के रचयिता गौतम, भगवान को नहीं मानते । इनके हेतुवाद में मनुष्य उलझे हुए हैं। विद्वान भगवत भजन जानते हैं कि इन सब दुष्ट मतवादों के द्वारा कभी स्पष्ट रूप से तो कभी अस्पष्ट रूप से श्रुति शास्त्रों की निंदा होती रहती है। इन सब मतों में पड़ने से अपराध निश्चित है , इसलिए दृढ़ता के साथ इन मतवादों से दूर रहना चाहिए।

मायावादी अति ही दुष्ट एवं वेद विरुद्ध मत है

ऊपर लिखे मतवादों को तथा मायावाद को छोड़ने से ही मानव निर्विवाद रूप से शुद्ध भक्ति रस का आस्वादन कर सकता है। मायावाद असत शास्त्र है और एक तरह का गुप्त मत है । इसमें वेदों के अर्थ की विकृति की गई है परंतु यह कलिकाल में प्रसिद्ध है।

श्रीहरिदास ठाकुर जी श्रीमन महाप्रभु जी से कहते हैं-हे प्रभु ! आपकी आज्ञा से ही उमापति महादेव जी ने ब्राह्मण रूप में आकर इस मायावाद रूप को प्रकाशित किया तथा मायावाद के

आचार्य बने। जैमिनी ने जिस प्रकार सिर्फ मुख से वेद को मानते हुए श्रुति शास्त्र के परिवर्तित अर्थों की व्याख्या की , उसी प्रकार मायावादी गुरुओं ने प्रच्छन्न (ढके हुए)बौद्ध धर्म को वेदवाक्यों के द्वारा स्थापितकरके भगवत भक्ति के असली मर्म को ही ढक दिया । इन सब मतवादों को स्वीकार करने से जीव भक्ति से दूर हो जाता है तथा उसका श्रीकृष्ण के प्रति नाम अपराध हो जाता है।

वेदों के विचारानुसार शुद्ध प्रक्रिया

वेदों की अभिधवृति (मुख्य अर्थ)को ग्रहण करने से शुद्ध भक्ति की प्राप्ति होती है जिससे वह श्रीकृष्ण रूपी प्रेम धन से धनी हो जाता है किंतु वेद वाक्यों में अनुचित रूप से लक्षणावृति (घुमा फिरा कर किया हुआ अर्थ) का प्रयोग करने से नित्य सत्य से जीव दूर रहता है और अपराध में ही फंसता चला जाता है। प्रणव(ॐ) श्रीकृष्ण नाम सभी वेदों द्वारा सम्मत है अर्थात सभी वेदों की राय है। महावाक्य प्रणव(ॐ) ही श्रीकृष्णनाम है। उस श्रीकृष्ण नाम को करने से भक्तजन आनन्दमय वैकुंठ गोलोक धाम को प्राप्त करते हैं। वेदों में कहते हैं कि इस जगत में भगवान नाम ही चिदस्वरूप है, जिसके आभास मात्र से सब प्रकार की सिद्धि हो जाती है।

वेद केवल शुद्ध नाम भजन की शिक्षा देते हैं

दुर्भाग्यशाली व्यक्ति ही वेद की इन शिक्षाओं को न मानकर, वेद की निंदा करते हुए नाम अपराध करते हैं किंतु जो शुद्ध नाम परायण भगवत भक्त लोग हैं , वह वेदों का आश्रय लेकर नाम रस रूपी प्रेम धन को प्राप्त करते हैं।सभी वेद कहते हैं कि श्रीहरिनाम ही सार है, उसका कीर्तन करो। ऐसा करने से आपकी भगवान में प्रगाढ़ प्रीति होगी तथा तुम्हे असीम आनन्द का अनुभव होगा। यही नहीं , वेद और भी कहते हैं कि जितने भी संसार से मुक्त महाजन हैं , वे वैकुंठ धाम में सदा सर्वदा श्रीकृष्ण नाम संकीर्तन ही करते रहते हैं।

तामस तंत्रों की शिक्षा वेद विरुद्ध है

कलियुग के तथाकथित लोग महाजन लोग चिन्मय पुरुष श्रीकृष्ण के नाम रस को त्याग कर माया शक्ति का भजन करते हैं । वे तामसिक तंत्रों को प्रमाणिक मानकर वेदों की निंदा करते हैं। वे शराब व मांस का सेवन करते हुए अधर्म का आचरण करते हैं । इस प्रकार के निंदक, श्रीकृष्ण नाम को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकते और न ही कभी उन्हें श्रीकृष्ण के श्रीवृन्दावन धाम की प्राप्ति होती है।

मायादेवी की निष्कपट कृपा ही हमारा प्रयोजन है

इस प्रकार पाखण्ड आचरण करने वाले व्यक्ति को मायादेवी अधोगति प्रदान करती है एवम भगवत नाम में उनकी रुचि नहीं होने देती किंतु यदि साधक की साधु सेवा की निष्कपट भावना द्वारा मायादेवी अर्थात दुर्गादेवी प्रसन्न होती है तो वे भी निष्कपट भाव से उसको श्रीकृष्ण के पादपदमों की छाया प्रदान करती है। मायादेवी श्रीकृष्ण की दासी हैं।वह श्रीकृष्ण से विमुख जीवों को दण्ड देती है। मायादेवी अपनी पूजा से इतनी प्रसन्न नहीं होती जितनी श्रीकृष्ण की पूजा से होती हैं।जो श्रीकृष्ण का नाम उच्चारण करते हैं , मायादेवी उन पर निष्कपट कृपा करते हुए उन्हें भवसागर से पार ले जाती हैं। अतः श्रुति शास्त्र की निन्दरूपी अपराध को छोड़कर श्रीनाम संकीर्तन रस में मग्न रहना चाहिए।

इस अपराध से मुक्त होने का उपाय

असावधानीवश यदि श्रुति शास्त्र की निंदा हो जाये तो पश्चाताप करते हुए श्रुति शास्त्रों की वंदना करनी चाहिए तथा उन श्रुति शास्त्रों को श्रीमद भागवत के साथ रखकर उनको पुष्प एवम तुलसी अर्पण करते हुए बड़े यत्न के साथ उनकी पूजा करनी चाहिए क्योंकि श्रीमद्भागवत जी सभी वेदों का सार हैं तथा ये साक्षात श्रीकृष्ण का अवतार हैं । यह भावना रखनी चाहिए कि भगवान श्रीकृष्ण रूपी श्रीमद्भागवत मुझ पर अवश्य कृपा करेंगे

। श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिदास ठाकुर जी के चरणों की रज ही जिनका भरोसा है, श्रीहरिनाम चिंतामणि उनके गले का हार है।

सप्तम अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 16

अध्याय 8

हरिनाम में अर्थवाद

श्रीगौर गदाधर तथा श्रीश्री राधामाधव की जय हो। श्रीमन महाप्रभु जी की सभी लीला स्थलियों की जय हो , गंगा जी की तथा समस्त वैष्णव भक्तों की जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे शचीनन्दन ! हे गौरहरि! श्रीहरिनाम में अर्थवाद की कल्पना अर्थात शास्त्रों में हरिनाम की महिमा बढ़ा चढ़ा कर लिखी गई है, ऐसा मानना अपराध है।

नाम महिमा

स्मृति शास्त्र कहते हैं कि श्रद्धा से अथवा अनायास ही कोई श्रीकृष्ण नाम लेता है तो दयालु श्रीकृष्ण दया के वशीभूत होकर उस पर कृपा करते हैं। श्रीहरिनाम के समान कोई निर्मल ज्ञान नहीं है। श्रीहरिनाम करने के समान और कोई भी प्रबल व्रत नहीं है। इस जगत में श्रीहरिनाम करने के समान कोई भी ध्यान नहीं है।श्रीहरिनाम के समान कोई श्रेष्ठ फल नहीं है। श्रीहरिनाम के समान कोई त्याग भी नहीं है ।श्रीहरिनाम के समान कोई पुण्य नहीं है। हरिनाम के बराबर तो कुछ भी नहीं है । विचार करने से मालूम पड़ेगा कि श्रीहरिनाम के समान गति किसी भी साधन में नहीं है। अतः श्रीहरिनाम ही परम मुक्ति है । श्रीहरिनाम ही श्रेष्ठ नाम है। श्रीहरिनाम से ही उच्चतम गति की प्राप्ति होती है। श्रीहरिनाम ही परम शांति स्वरूप है। श्रीहरिनाम ही उच्चतम स्थिति है। श्रीहरिनाम ही श्रेष्ठतम भक्ति है। श्रीहरिनाम से ही मति शुद्ध होती है। श्रीहरिनाम से ही श्रीकृष्ण में परम प्रीति होती है। श्रीहरिनाम ही श्रेष्ठतम स्मृति है। श्रीहरिनाम ही कारण तत्व हैं । श्रीहरिनाम ही सबके प्रभु हैं।

श्रीहरिनाम ही परमाराध्य हैं। श्रीहरिनाम ही सब गुरुओं में से श्रेष्ठतम गुरु हैं।

श्रीकृष्णनाम की सर्वोतम्मता

एक हज़ार विष्णु नाम के बराबर एक राम नाम होता है जबकि तीन राम नाम के बराबर एक कृष्ण नाम होता है।

नाम में अर्थवाद करने से अवश्य ही नरक गति होती है

श्रुति शास्त्र हमेशा ही श्रीहरिनाम कि महिमा का गान करते रहते हैं तथा जगतवासियों को बताते हैं कि भगवतनाम चिन्मय तत्व हैं । श्रुति व स्मृति शास्त्रों के द्वारा प्रदर्शित श्रीहरिनाम की महिमा को पाखंडी लोग अर्थवाद कहते हैं । उनका कहना है कि यह महिमा तो बढ़ा चढ़ा कर लिखी गयी है। जो अधम जीव श्रीहरिनाम में अर्थवाद करते हैं , वह पापी नरक में सड़ सड़ कर मरते हैं।हरिनाम का जो फल श्रुति शास्त्रों में वर्णित है, वह सत्य नहीं है, केवलमात्र हरिनाम में रुचि उत्तपन्न करने को यह सब कहा गया है - ऐसा जो लोग कहते हैं वह शास्त्रों के सही तातपर्य को नहीं जानते हैं तथा वह अधम जीव यह भी नहीं जानते हैं कि जीव का मंगल या अमंगल किस बात में है। वह

तो अपने दिमाग से ही हर बात का अल्प अर्थ सोचते हैं।

श्रीहरिनाम का फल सत्य है

कर्मकांड में जैसी कपटता व स्वार्थ बुद्धि भरी पड़ी है , वह भक्तितत्व अर्थात श्रीहरिनाम में नहीं है। श्रीहरिदास ठाकुर जी का मानना है कि कर्मकांड में रुचि उतपन्न करने के लिए उसमें बहुत तरह के फलों का प्रलोभन दिया गया है परंतु भक्तितत्व में वर्णित फल, मात्र प्रलोभन नहीं , वरन नित्य सत्य है।

श्रीहरिनाम के समान कुछ भी नहीं है तथा श्रीहरिनाम देने वालों का अपना कुछ भी स्वार्थ नहीं होता। जो श्रद्धावान व्यक्ति को श्रीहरिनाम प्रदान करते हैं , वह ऐसा करके श्रीकृष्ण की भक्ति ही करते हैं जबकि कर्मकांड के द्वारा यज्ञ कराने वालों को धन का लोभ रहता है। इसलिए उसमें कपटता का प्रभाव आ ही जाता है। वेद व स्मृतियां भगवान के नाम के फल की अनन्त महिमा बखान करती हैं परंतु स्वार्थी व्यक्ति इसे नहीं मानते।कर्मकांडी व्यक्ति श्रीहरिनाम करते हुए बहुत प्रकार के शुभ व अशुभ सांसारिक फलों की इच्छा रखते हैं । फल की कामना को त्यागकर जो कर्म करते हैं , उनका हृदय विशुद्ध हो जाता है तथा विशुद्ध हृदय में सांसारिक विषयों से वैराग्य तथा आत्मतत्व में अनुराग उदित होता है। धीरे धीरे यह अनुराग ही

प्रगाढ़ प्रेम में परिवर्तित हो जाता है।

श्रीहरिनाम चिन्मय हैं , उनमें अर्थवाद हो ही नहीं सकता

श्रीहरिनाम करने से आत्मसाक्षात्कार व आत्मरति स्वतः ही हो जाती है । साधन काल में ही हरिनाम साध्य वस्तु का कुछ अनुभव करवा देते हैं । निष्काम कर्म का चर्मफल , हरिनाम में रुचि उतपन्न होना है। सत्य वस्तु के लिए किया गया निष्काम कर्म निश्चित रूप से हरिनाम के प्रति श्रद्धा उतपन्न करता है। हरिनाम उस फल को, बड़ी सरलता व शीघ्रता से प्राप्त करते हैं, जो कि चौदह लोकों में भृमण करने वाला ब्राह्मण भी प्राप्त नहीं कर सकता। प्रत्येक दृष्टि से हरिनाम का फल सर्वोपरि ही है। कर्मी व ज्ञानी अपनी ईर्ष्या के कारण कितना भी प्रयास कर लें , नाम महिमा का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते।

नामाभास के द्वारा सभी कर्मों का व ब्रह्मज्ञान का फल प्राप्त होता है।

नामाभास होने मात्र से ही सभी कर्मों तथा ज्ञान का फल प्राप्त हो जाता है। हरिनाम के नामाभास से ही यदि इतना फल मिलता है तो शुद्ध हरिनाम क्या दे सकता है इसकी कल्पना भी

नहीं की जा सकती। अतएव शास्त्रों में जितनी भी हरिनाम की महिमा कही गयी है , शुद्ध नामाश्रित भक्त उसे निश्चित रूप से प्राप्त करता है। इसमें जिसको सन्देह है , वह व्यक्ति अधम है तथा नाम अपराध से अवश्य ही उसका पतन हो जाएगा। वेदों में, रामायण में, महाभारत में तथा पुराणों के प्रारंभ में , मध्य में तथा अंत में हरिनाम की ही महिमा वर्णित की गई है। वेद वाक्यों में जो हरिनाम की महिमा गाई गयी है , वह अनादि तथा अटल है । इसमें अर्थवाद की कल्पना करके भला क्या फल मिलेगा ?अर्थात हमारे द्वारा यह बड़ी भारी भूल होगी या यह हमारा अपराध ही होगा कि यह गलत धारणा हम मन में बनाये रखें कि हरिनाम की जो महिमा शास्त्रों में वर्णित है , ये सब काल्पनिक है।

श्रीहरिनाम की शक्ति, ज्ञान एवं कर्म की शक्ति की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक है

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान चैतन्य महाप्रभु जी से कहते हैं कि नाम और नामी एक ही हैं । हे प्रभु ! आपने अपने नाम में तमाम शक्तियों का समावेश करके श्रीहरिनाम संकीर्तन को सर्वश्रेष्ठ भक्ति बना दिया है।हे प्रभु!आप पूर्ण स्वतंत्र हैं तथा सर्वशक्तिमान हैं । आपकी इच्छा से ही विधि का विधान चलता है । आपने अपनी इच्छा अनुसार कर्म को जड़ बनाया है अर्थात कर्म से केवल दुनियावी वस्तुओं की ही प्राप्ति हो सकती है,

जबकि आपने ही ज्ञान में मोक्ष प्रदान करने की शक्ति भर दी है । हे प्रभु ! आप स्वतंत्र इच्छामय हो। आपने अपने ही नाम अक्षरों में अपनी सारी शक्तियां भर दी हैं , इसलिए आपका नाम भी आपकी तरह सर्वशक्तिमान है।अतः जो बुद्धिमान पुरुष हैं , वे नाम में अर्थवाद नहीं करते।

इस अपराध से मुक्त होने का उपाय

यदि नाम के प्रति अर्थवाद रूपी अपराध हो जाये तो बड़ी दीनता के साथ वैष्णव सभा में जाकर वैष्णवों से अपने अपराध के बारे में निवेदन करना चाहिए तथा दुखी मन से नामापराध के प्रति क्षमा याचना करनी चाहिए। हरिनाम की महिमा को जानने वाले भक्त आप पर कृपा करते हुए आपको क्षमा करेंगें। श्रीहरिनाम की अनन्त महिमा पर विश्वास न करते हुए हरिनाम में अर्थवाद की कल्पना करने की चेष्ठा करना केवल मात्र माया की विडंबना है। नाम में अर्थवाद रूपी अपराध करने वाले के साथ यदि कभी बातचीत हो जाये तो उसी अवस्था मे कपड़ों के साथ गंगा स्नान करना चाहिए।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीकृष्ण की प्रिय वंशी की कृपा में जिनका विश्वास है, श्रीहरिनाम चिंतामणि ही उनका

अलंकार है।

अष्टम अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 17

अध्याय 9

हरिनाम के बल पर पाप करना

नाम्नो बलाद यस्य पपबुद्धिर्न

विद्यते तस्य यमैर्हीं शुद्धिः

श्रीगदाधर जी, श्रीगौरांग महाप्रभु , श्रीमती जान्हवा देवी जी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द जी की जय हो। सीतापति

अद्वैताचार्य जी और श्रीवास आदि जितने भी भक्त हैं सभी की जय हो! जय हो ! जय हो!

नाम ग्रहण करने से सभी प्रकार के अनर्थ दूर होते हैं

नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिनाम शुद्ध सत्वमय हैं और भाग्यवान जीव ही श्रीहरिनाम का आश्रय लेते हैं।हरिनाम के प्रभाव से जीव के हृदय में भरे हुए सारे अनर्थ अति शीघ्र ही दूर हो जाते हैं। हृदय की दुर्बलता नामक अनर्थ का तो उनके मन में स्थान ही नहीं रहता। हरिनाम के जप से साधक के मन में दृढ़ता आती है तब उसमें पापबुद्धि नहीं रहती। यहां तक कि, हरिनाम के प्रभाव से उसके हृदय के सारे पिछले पाप नष्ट हो जाते हैं और उसका चित्त बिल्कुल शुद्ध हो जाता है। अज्ञान के कारण पाप बीज तथा पाप की वासना जीव के हृदय में रहती है , उसके कारण जीव संसार में कष्ट भोगता रहता है।नाम जप के द्वारा जब किसी का हृदय निर्मल हो जाता है तो उसके अंदर सभी जीवों के प्रति दयाभाव उतपन्न होता है।वह सदा सर्वदा दूसरों का मंगल करने में ही लगा रहता है। उससे दूसरों का कष्ट नहीं देखा जाता तथा उसकी हर समय यही चेष्ठा होती है कि वह कैसे दूसरे जीवों के क्लेश से उतपन्न ताप को शांत कर सके। ऐसी स्थिति में विषय वासना तो उसे बिल्कुल तुच्छ सी प्रतीत होती है। इन्द्रिय भोगों की लालसा तो

उसके हृदय में रहती ही नहीं। धन दौलत और कामनी के प्रति उसका कोई आकर्षण भी होता ही नहीं।उन्हें प्राप्त करने के लिए वह न तो कोई प्रयास करता है अपितु उसे इससे घृणा होती है। संसार में रहने के लिए ईमानदारी से जितना भी धन कमा पाता है उसी में संतोष करता है। उसकी वास्तविक चेष्ठा तो भगवत भक्ति के अनुकूल कार्य को करने में तथा प्रतिकूल कार्यों का त्याग करने में ही रहती है।श्रीकृष्ण ही उसके एकमात्र रक्षाकर्ता तथा पालनकर्ता हैं इस प्रकार का दृढ़ विश्वास उसमें होता है। उसके हृदय में शरीर के प्रति मैं भाव तथा शरीर सम्बन्धी व्यक्तियों तथा वस्तुओं में ममता नहीं रहती। स्वाभाविक रूप से वह तो बड़ी दीनता के साथ हमेशा ही हरिनाम का आश्रय लिए रहता है। ऐसे में उसकी मति पापों में कैसे हो सकती है या ऐसी अवस्था में उसके द्वारा पाप भला कैसे हो सकते हैं।

हरिनाम के द्वारा पिछले पाप तथा पापों की गंध भी दूर हो जाती है।

निरन्तर हरिनाम करते रहने से पहले के जो दुष्ट भाव हैं, वह धीरे धीरे क्षीण होते चले जाते हैं और उसके स्थान पर साधक के हृदय में पवित्र स्वभाव प्रकटित होने लगता है।जब हरिनाम में थोड़ी थोड़ी रुचि उतपन्न हो रही होती है, ऐसे समय में अर्थात

पापमय जीवन तथा हरिनाम के आश्रय में जीवन के संधिकाल में पिछले कुछ पापों की गंध रह जाती है।किंतु निरन्तर हरिनाम करते रहने से या यूं कहें कि श्रीहरिनाम के प्रभाव से उसके हृदय से पूर्व पापों की गंध भी समाप्त हो जाती है तथा जीव की भगवत भक्तिमय मति उदित होती है।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! आपने महाभारत के युद्ध के समय अर्जुन के सामने प्रतिज्ञा की थी कि मेरा भक्त कभी संकट में नहीं पड़ेगा और यदि किसी कारणवश ऐसा हुआ भी तो आप स्वयम उसकी रक्षा करेंगे। यही कारण है कि हरिनाम करने वालों के तमाम पाप आपकी कृपा से खत्म हो जाते हैं , जबकि ज्ञानमार्गी व्यक्ति पापों से छुटकारा पाने के लिए बहुत प्रयत्न करता है परन्तु आपका आश्रय छोड़ने के कारण उसका शीघ्र ही पतन हो जाता है। अतः हे प्रभु! ये सिद्धांत है कि जो आपके चरनाश्रित हैं , ऐसे भक्त के निकट कभी विघ्न नहीं आते हैं।

असावधानी वश यदि पाप हो जाता है तो उसके प्रायश्चित की कोई आवश्यक्ता नहीं रहती है

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि यदि कभी किसी भक्त से

प्रमादवश अथवा असावधानी वश कोई अपराध कोई पाप हो जाये तो उसके लिए कोई प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि वह पाप तो क्षणिक है । वह ज्यादा समय तक भक्त के पास टिक नहीं सकता है।वह क्षणिक पाप तो हरिनाम के प्रवाह रस में बह जाता है। इसलिए असावधानीवश भक्त द्वारा हुए किसी भी पाप से उनकी दुर्गति नहीं होती है। परंतु यदि कोई चँचल व्यक्ति हरिनाम के बल पर नए नए पाप करता चला जाता है तो उसकी यह क्रिया केवल मात्र कपटता ही होगी क्योंकि इसमें उसने कपटता का आश्रय लिया हुआ है अर्थात कोई व्यक्ति यदि यह सोच कर कोई नए नए पाप करता रहे कि हरिनाम के प्रभाव से मेरे समस्त पाप नष्ट हो जाएंगे तो वह कपटी है। नामापराध से व्यक्ति को शोक एवम मृत्यु रूपी भय की प्राप्ति होती है।भक्ति शास्त्रों के अनुसार असावधानी तथा जान बूझ कर किये जाने वाले पापों में जमीन आसमान का अंतर है।

पापों में मति होने से नामापराध होता है

संसारी व्यक्ति जब पाप करता है तो उसके लिए प्रायश्चित तथा पश्चाताप का विधान है परंतु यदि कोई यह सोचकर कि मेरे द्वारा किया हरिनाम मेरे पाप धो डालेगा , ऐसे हरिनाम के बल बूते पर पाप करने की भावनाओं को हृदय में रखने से उसका कोई प्रायश्चित नहीं है, उसकी तो दुर्गति ही होगी। यहां तक कि

बहुत तरह की नरक यंत्रणाओं में कष्ट पाने पर भी उसका उद्धार नहीं होता।

मन में पाप की भावना आंजे से जब इतना कष्ट मिलता है तो नाम के सहारे पाप करना कितना बड़ा दोष है, उसके बारे में भला क्या कहा जाए।

धूर्त व्यक्ति के द्वारा हरिनाम के बलबूते पर पाप करना ही मर्कट वैराग्य है

श्रील हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि मैंने शास्त्रों से सुना है कि भगवान का एक नाम जितने पापों को धो सकता है उतने पाप कोई महापापी भी करोड़ों जन्मों में नहीं कर सकता। घर मे मसाला पीसते हुए, झाड़ू पोछा लगाते हुए तथा रसोई बनाने के लिए आग जलाते हुए इत्यादि कई तरीकों से कीड़े मकोड़े के अनजाने में मर जाने के कारण जो पांच तरह के अपराध लगते हैं तथा दुनिया के महापाप भी नामाभास मात्र से दूर हो जाते हैं। परंतु शास्त्रों के इन वाक्यों के बलबूते पर धोखेबाज लोग हरिनाम करने का ढोंग करते हैं।गृहस्थी के झंझटों से बचने के लिए वे वैरागी का भेष धारण कर दौलत तथा कामिनी की लालसा से जर्जरित होकर देश विदेश में घूमते हैं।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! आपने ही तो कहा था कि जो मर्कट वैराग्य करता है अर्थात जो व्यक्ति गृहत्यागी होते हुए भी इस्त्रियों सँग सम्भाषण करता है उसका वैराग्य वेश केवल दिखावे के लिए होता है।

निष्कपट रूप से हरिनाम का आश्रय न करने पर अर्थात मर्कट वैराग्य करने पर इस प्रकार का अपराध होना अनिवार्य है

वैरागी का वेश धारण करके जो ढोंगी अपनी स्त्री के साथ घर मे रहता है , वह पृथ्वी पर भार स्वरूप है। ऐसे ढोंगियों से ज्यादा बातचीत नहीं करनी चाहिए। जिस भक्त ने हरिनाम का आश्रय ले लिया है वह चाहे घर में रहे या जंगल में , इसमें कोई दोष नहीं है । हरिनाम के बल पर पाप करना या पाप की भावना को हृदय में पाले रखना महा अपराध है , ऐसा करने से भजन में बाधाएं आती हैं। निष्कपट होकर हरिनाम करने से भगवान श्रीहरि को बड़ा संतोष होता है।

नामाभासी व्यक्ति को यदि बुरी संगति मिल जावे तो निश्चित ही उससे यह अपराध होगा अर्थात जिसके हृदय में शुद्ध हरिनाम उदित हो चुका है , उसके द्वारा यह अपराध नहीं होगा।

शुद्ध हरिनाम आश्रित व्यक्ति को नामापराध स्पर्श भी नहीं करते

शुद्ध नामाश्रित व्यक्ति को कभी किसी भी रूप में शास्त्रों द्वारा वर्णित दस नामापराध कभी स्पर्श नहीं करते क्योंकि नामाश्रित व्यक्ति की श्रीहरिनाम सदा रक्षा करते हैं।जब तक जीव के हृदय में शुद्ध नाम उदित नहीं होता , तब तक ही अपराध होने का भय बना रहता है। इसलिए नामाभासी साधक यदि अपना मंगल चाहता है तो उसे नाम के बल पर पाप बुद्धि जैसे अपराधों से दूर रहना चाहिए।

सावधानी से कब तक अपराधों को छोड़ना चाहिए

शुद्ध नामाश्रित व्यक्तियों के सँग में रहकर सर्वदा ऐसा आचरण करते रहना चाहिए जिससे हमसे कोई अपराध न हो। जिनके मुख से शुद्ध हरिनाम उच्चारित होता है, उनका मन सदैव दृढ़ रहता है। उनका दृढ़ मन एक क्षण के लिए भी श्रीकृष्ण के पादपदमों से विचलित नहीं होता । अतः जितने दिन तक साधक के अंदर नाम का बल विद्यमान नहीं होता अर्थात जब तक उसके हृदय में शुद्ध नाम उदित नहीं होता , तब तक उसे अपराधों से भयभीत रहना ही चाहिए। साधक को चाहिए कि विशेष यत्न के साथ पापमय बुद्धि को दूर करके दिन रात

निरन्तर मुख से हरिनाम करता रहे। श्रीगुरुदेव की कृपा से जब उसे सम्बन्ध ज्ञान होगा , तब ही उसके द्वारा श्रीकृष्ण भक्ति व श्रीकृष्ण नाम ठीक प्रकार से हो पायेगा।

इस अपराध का प्रतिकार

यदि प्रमाद से अथवा असावधानी वश नाम के बल पर पाप बुद्धि होती है तो शुद्ध वैष्णवों के सँग द्वारा उसे दूर करने की चेष्ठाएं करनी चाहिए। पाप वासना एक ऐसा लुटेरा है जो भक्ति मार्ग में सब कुछ लूट कर ले जाता है।ऐसे समय में विशुद्ध वैष्णव ही भक्तिमार्ग में इन लुटेरों से हमारी रक्षा करते हैं। यदि उच्च स्तर से हम भक्ति मार्ग के रक्षकों का अर्थात वैष्णवों का नाम पुकारेंगे तो पाप वासनामय लुटेरे हमारे हृदय से भाग जाएंगे और हमारे भक्तिमार्ग के रक्षक हमें बचाने के लिए आ जाएंगे।इसलिए शुद्ध वैष्णवों को आदर के साथ स्मरण करते रहना चाहिए अथवा आदर के साथ शुद्ध वैष्णवों का नाम उच्चारण करना चाहिए।

श्रील हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि बड़े आदर के साथ वैष्णवों को पुकारें । ऐसा करने से "डरो मत , मैं तुम्हारा रक्षक हूँ" -ऐसा कहकर वैष्णव तुम्हारे पास आ जाएंगे।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि वैष्णवों के चरणों की सेवा करना ही जिनका व्रत है, वे ही श्रीहरिनाम चिंतामणि का गान करते हैं।

नवम अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 18

अध्याय 10

श्रद्धाहीन व्यक्ति को नाम उपदेश करना अपराध है

श्रीगदाधर जी , श्रीगौरांग व श्रीमती जांह्वा देवी जी के जीवन स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की जय हो। सीतापति अद्वैताचार्य

जी की तथा श्रीवास पंडित आदि सब भक्तों की सर्वदा जय हो।

अपने दोनों हाथों को जोड़कर श्रीहरिदास ठाकुर जी महाप्रभु जी से कहते हैं -हे प्रभु! अब आगे के नाम अपराधों का श्रवण कीजिये।

हरिनाम में श्रद्धा होने पर हरिनाम का अधिकार प्राप्त होता है

श्रीहरिनाम में होने वाले दृढ़ विश्वास को श्रद्धा कहते हैं। यह श्रद्धा जिनके हृदय में उदित नहीं हुई, वे बाहिर्मुख व दुखशायी अथवा बुरे उद्देश्य वाले व्यक्ति हरिनाम नहीं सुन्ना चाहते क्योंकि उनका हरिनाम में अधिकार ही उतपन्न नहीं हुआ होता। श्रद्धावान व्यक्ति ही हरिनाम करने के उचित अधिकारी हैं। ऊंची जाति, ऊंचा कुल , दुनियावी ज्ञान, ताकत, विद्या एवम धन आदि हरिनाम का अधिकार देने के योग्य नहीं हैं । हरिनाम की महिमा में जिनका सदृढ़ विश्वास है , तमाम शास्त्रों में उन्हीं को श्रद्धावान कहा गया है।

श्रद्धाहीन व्यक्ति को हरिनाम देने से नाम अपराध होता है

वैष्णवों के आचरण के अनुसार उस व्यक्ति को हरिनाम दीक्षा प्रदान नहीं की जाती , जिनकी भगवान के नाम के प्रति श्रद्धा न

हो । श्रद्धाहीन व्यक्ति यदि हरिनाम की दीक्षा प्राप्त कर लेते हैं , तो अवश्य ही हरिनाम की अवज्ञा करेंगे, ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। जिस प्रकार सुअर को रत्न देने से वह उसे तोड़ फोड़ देगा , बन्दर को वस्त्र देने से वह उसे फाड़ देगा , उसी प्रकार श्रद्धाहीन व्यक्ति नाम को प्राप्त करके खुद अपराधी बन जाता है तथा साथ ही अपने गुरु को भी शीघ्र ही अभक्त बना देता है।

श्रद्धाहीन व्यक्ति यदि हरिनाम के लिए प्रार्थना करे तो उससे किस प्रकार का व्यवहार करना उचित है

श्रद्धाहीन व्यक्ति यदि कपटता करके वैष्णवों के पास जाकर हरिनाम मांगते हैं तो उसके धूर्तता पूर्ण वाक्यों को साधु पुरुष समझ लेते हैं और उन्हें कभी भी हरिनाम नहीं देते। साधु उन्हें बड़े स्नेह से कहते हैं कि तुम कपटता छोड़ दो तथा प्रतिष्ठा की आशा को छोड़कर हरिनाम में श्रद्धा करो। हरिनाम में श्रद्धा होने से अनायास ही तुम्हें हरिनाम मिल जाएगा और हरिनाम के प्रभाव से तुम इस संसार से पार हो जाओगे परन्तु जब तक तुम्हारी हरिनाम में श्रद्धा नहीं होती तब तक तुम्हारा हरिनाम लेने का कोई भी अधिकार नहीं है। तुम शुद्ध भक्तों के मुख से शास्त्रों में वर्णित हरिनाम की महिमा को श्रवण करो तथा प्रतिष्ठा की आशा को छोड़कर दीनता को अपनाओ।जब तुम्हारी नाम में श्रद्धा हो जाएगी , तभी हरिनाम रूपी महाधन के धनी , श्रील गुरुदेव तुम्हें हरिनाम रूपी महाधन प्रदान करेंगे।

धन के लोभ से यदि कोई श्रद्धाहीन व्यक्ति को हरिनाम देता है तो वह नामापराधी होकर नरक में जाता है।

इस अपराध से छुटकारा प्राप्ति का उपाय

असावधानी वश यदि श्रद्धाहीन व्यक्ति को यदि हरिनाम दे दिया जाए तो उससे गुरु के पतन होने का डर लगा रहता है। ऐसी अवस्था में गुरु को चाहिए कि वह वैष्णव समाज में जाकर श्रद्धाहीन व्यक्ति को हरिनाम देने के बारे में बताये और उस दुष्ट शिष्य को त्याग दे। ऐसा नहीं करने से इस अपराध के कारण वह गुरु धीरे धीरे भक्तिहीन तथा दुराचारी होकर माया के जाल में फंस जाता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी को श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आपने हरिनाम का प्रचार करने के लिए भक्तों को यह आदेश दिया है कि श्रद्धावान व्यक्ति को ही श्रीहरिनाम का उपदेश करें तथा गावँ गावँ तथा शहर शहर में जाकर श्रीहरिनाम की महिमा का प्रचार करें ।

श्रद्धा प्राप्त करके ही जीव सद्‌गुरु के सम्बन्ध में विचार करेगा । श्रद्धावान जीव सद्‌गुरु से श्रीहरिनाम ग्रहण करके अनायास ही श्रीकृष्ण रूपी प्रेम धन की प्राप्ति कर लेगा । गुरु को चाहिए कि वह चोर, वैश्य तथा कपटी आदि पापों में लिप्त व्यक्तियों की

पापमय बुद्धि को समाप्त करके उनके हृदय में श्रीकृष्ण नाम के प्रति श्रद्धा उतपन्न करें। इस प्रकार के व्यक्तियों की जब हरिनाम में श्रद्धा उतपन्न हो जाए तो वे उन्हें हरिनाम प्रदान करें । इस प्रकार हरिनाम का उपदेश करके सारे विश्व का उद्धार करें।

श्रद्धाहीन व्यक्ति को हरिनाम देने का फल

पापियों की पापमय बुद्धि को खत्म न करके तथा उनके हृदय में भगवत नाम के प्रति श्रद्धा उतपन्न न करके जो व्यक्ति उन्हें हरिनाम धन प्रदान करता है , उसका इसी से पतन हो जाता है।श्रद्धाहीन शिष्य हरिनाम प्राप्त करके नामापराध करता है , जिससे गुरु की भक्ति रस प्राप्ति में बाधा पहुंचती है। इस अपराध के कारण गुरु और शिष्य दोनो ही नरक में जाते हैं ।

श्रीमन महाप्रभु जी को श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आपने जगाई मधाई के प्रति कृपा की थी। हे गौरहरि ! आपने पहले उनके मन में श्रीहरिनाम के प्रति श्रद्धा उतपन्न की और फिर उन्हें हरिनाम प्रदान किया । इस अद्भुत चरित को सभी लोग श्रद्धा के साथ अपने जीवन में आचरण करें ।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि भक्तों के चरण तथा भक्तों की सेवा ही जिनका आनन्द है । श्रीहरिनाम चिंतामणि उनके गले का हार है।

दशम अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 19

अध्याय 11

अन्य शुभ कर्मों के साथ नाम को बराबर समझना

धर्म-व्रत-त्याग-हुतादि-सर्व शुभ -क्रिया-सामयमपि प्रमाद

नाम प्रचार के उद्देश्य से अवतरित श्रीहरिनाम के अवतारस्वरूप श्रीगौरचन्द्र जी की जय हो। समस्त तत्वों के सार श्रीहरिनाम की जय हो । श्रील हरिदास ठाकुर जी बोले - हे प्रभु ! दूसरे शुभ कर्म कभी भी श्रीहरिनाम के बराबर नहीं हो सकते।

नाम का स्वरूप

श्रील हरिदास ठाकुर जी कहने लगे -हे प्रभु ! आपका स्वरूप तो चिन्मय सूर्य के समान है। आपका नाम, विग्रह, लीला , धाम सभी चिन्मय हैं। आपके मुख्य नाम आपसे अभिन्न हैं जबकि जड़ीय अथवा दुनियावी वस्तुओं के नाम सदा उन वस्तुओं से भिन्न हैं । भक्तों के मुख से उच्चारित भगवतनाम , गोलोक से प्रकट होते हैं। यह हरिनाम , सारे शरीर में फैलकर जिव्हा पर नृत्य करते हैं। भगवान का नाम चिन्मय है तथा गोलोक धाम से अवतरित होता है, इस प्रकार की भावना करने से हरिनाम करने पर ही शुद्ध हरिनाम होता है । जिसका ऐसा दिव्य ज्ञान नहीं है और जो हरिनाम में जड़ीय बुद्धि रखते हैं ,उन्हें बहुत लंबे समय तक नरक की यंत्रणाओं को सहन करना पड़ता है।

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु! शास्त्रों में आपको प्राप्त करने के जो उपाय बताए गए हैं , अलग अलग अधिकारों के कारण वे उपाय -कर्म , ज्ञान व भक्ति के विभिन्न अंगों के कारण बहुत से हो गए हैं।

कर्म का स्वरूप

जड़ बुद्धि से ग्रसित व्यक्ति जड़ीय द्रव्यों की प्राप्ति तथा काल

के आश्रय में रहकर मृत्य के भय से आपकी साधना करता है। हे हरि ! आप जीवों को अभय दान देने वाले हो तथा आपके समान कोई नहीं है।आपके चरणों का आश्रय लेने से जीव भवसागर से पार हो जाता है।कर्म मार्ग में आपके चरणों का आश्रय प्राप्त करने के लिए यज्ञ करना, तलाब व कुएं का निर्माण करवाना,तीनों समय स्नान करना, दान , योग,वर्णाश्रम धर्म का पालन,तीर्थ यात्रा, व्रत, माता पिता की सेवा, ध्यान, ज्ञान, देवताओं के लिए तर्पण तपस्या तथा प्रायश्चित आदि विधान - जड़ीय द्रव्यों तथा जड़ीय भावों का आश्रय लेने के कारण जड़ीय हैं।इन सबका आश्रय लेने से मात्र शुभ कर्म होते हैं।अर्थात दुनियावी उपायों का कर्मफल भी जड़ीय ही होता है। परंतु जब किसी साधक को भक्ति में सिद्धि प्राप्त होती है तो ऐसे जड़ीय तथा अचिन्त्य उपाय स्वयम ही छूट जाते हैं।क्योंकि तमाम सिद्धियों का सार पूर्ण आनन्दमयी भगवान की प्रेम प्राप्ति ही है।यही जीवों का सर्वोत्तम उपेय अर्थात प्रयोजन है।परंतु बद्ध जीव इन सब जड़ीय वस्तुओं के बिना रह नहीं पाता।उसकी तमाम क्रियाओं में तथा चिंता में जड़ीय भाव अवश्य ही विधमान रहता है किंतु इस जड़ीय सिद्धांत में रहते हुए जड़ातीत शुद्ध भक्ति की खोज करना ही कर्म आदि की कुशलता है।अतः क्रमानुसार देखा जाए तो सभी शुभ कर्म जीव के प्रयोजन भगवत प्रेम के उपाय ही हैं।लेकिन इस मार्ग से जीव को भगवत भक्ति व भगवत प्रेम बहुत विलम्ब से मिलता है

क्योंकि यहां पर उपाय तो दुनियावी जो कि जड़ हैं परन्तु भगवत प्रेम तो पूर्णतः चेतन है।अतः शुभ कर्मों के द्वारा भगवत प्रेम की प्राप्ति में होने वाले विलम्ब का कारण कर्मों का जड़ होना तथा भगवत प्रेम का दिव्य होना है।

साधनाकाल में हरिनाम किस प्रकार उपाय है

हे प्रभु ! आपने विशेष कृपा करके जगतवासियों को हरिनाम प्रदान किया इसलिये

आप अपना मंगल चाहने वाले जीव , कृष्ण प्रेम रूपी सिद्धि को प्राप्त करने के लिए हरिनाम का ही आश्रय लेते हैं। शास्त्रों के मत अनुसार हरिनाम ही कृष्ण प्रेम प्राप्ति का उपाय है इसलिए दूसरे दूसरे सुकर्मों के साथ गिना गया है। ठीक उसी प्रकार जैसे सर्वेश्वर भगवान विष्णु जी की ब्रह्मा जी एवम शिव जी के साथ त्रिभुवन के देवता के रूप में गणना की जाती है।

श्रीहरिनाम शुद्ध सत्वमय हैं

श्रीहरिनाम का स्वरूप शुद्ध सत्वमय होता है।इसमें लेश मात्र भी जड़ीय गन्ध नहीं होती। जड़ीभूत जीवों ने अर्थात अविद्याग्रस्त जीवों ने श्रीहरिनाम में जड़ीय भावना करके उसे

अन्य शुभ कर्मों के समान एक कर्म मान लिया है।मायावाद के कारण इस प्रकार का नाम अपराध होता है,जिस दोष के कारण हमेशा ही भक्ति में बाधा उतपन्न हो जाती है।

श्रीहरिनाम साधन होते हुए भी साध्य है

हे प्रभु ! आपका श्रीकृष्ण नाम पूर्णानन्द तत्व है । यह श्रीकृष्ण नाम साधन भी है और साध्य भी।इसी कारण इसकी विशेष महिमा है। जीवों के ऊपर उपकार करने के लिए श्रीहरिनाम ने साधन के रूप में इस धरातल पर अवतार लिया है। तमाम शास्त्र इसके प्रमाण हैं।यहां कहा गया है कि श्रीकृष्ण नाम उपाय भी है तथा उपेय भी अर्थात हरिनाम साधन भी है और साध्य भी। अपने अपने अधिकार के अनुसार सभी जीव श्रीहरिनाम का अनुसरण करते हैं। यह बड़ी विचित्र बात है कि जब तक जीव के हृदय में आत्मरति उतपन्न नहीं हो जाती तब तक वह हरिनाम को आत्मरति रूपी उपेय की साधना समझता रहता है।

शुभ मार्ग गौण उपाय हैं जबकि हरिनाम मुख्य उपाय है

उपाय दो प्रकार के होते हैं -मुख्य उपाय तथा गौण उपाय। गौण

उपाय शुभ कर्म हैं जबकि हरिनाम मुख्य उपाय है।शास्त्रों में जितने भी प्रकार के शुभ कर्मों का वर्णन पाया जाता है उनमें से कोई भी हरिनाम के समान नहीं हो सकता। यही सब शास्त्रों का मर्म है।सरल हृदय से जब कोई श्रीकृष्ण नाम का कीर्तन करता है तब दिव्य आनन्द प्रकट होकर उसके चित्त को आनन्द से विभोर करके उससे नृत्य करवाता है।श्रीकृष्ण नाम का ऐसा चमत्कारिक स्वभाव है कि यह साधक को ऐसी आत्म रति व आत्म क्रीड़ा प्रदान करता है कि इस आनन्द के ऊपर और कुछ भी नहीं होता है।ब्रह्मज्ञान तथा योग में जो आनन्द है वह बहुत थोड़ा है क्योंकि वह तो इस दुनिया के दुखों से केवल छुटकारा मात्र है । अथवा यह भी कहा जा सकता है कि ब्रह्मज्ञान तथा योग में उस परम आनन्द की छाया मात्र है जबकि श्रीकृष्ण नाम मे जो सुख है वह असीम है।

अन्य शुभ कर्मों से श्रीहरिनाम की विलक्षणता

हरिनाम के सम्बन्ध में विलक्षण बात यह है कि सदहन काल मे हरिनाम उपाय स्वरूप है जबकि सिद्धावस्था में यही हरिनाम उपेय स्वरूप है। उपाय स्वरूप हरिनाम में ही उपेय सिद्ध है जबकि यह स्पष्ट है कि ऐसी बात अन्य कर्मों में नहीं है।दुनियावी सब कर्म जड़ आश्रित होते हैं जबकि हरिनाम सदा ही चिन्मय है एवम स्वाभाविक सिद्ध ही है।साधन काल मे भी हरिनाम शुद्ध और निर्मल होता है किंतु साधक के अनर्थों के कारण

मलिन से लगता है।साधु सँग प्राप्त होने से ही जड़ बुद्धि का विनाश होता है।जड़बुद्धि के नाश होने पर अर्थात सभी अनर्थों के समाप्त होने पर साधक के हृदय में शुद्ध हरिनाम का स्फुरण होता है।हरिनाम करने वाले साधक को छोड़कर अन्य शुभ कर्म करने वाले साधक उपेय को प्राप्त कर लेने पर उपाय को छोड़ देते हैं किंतु हरिनाम करने वाले भगवत भक्त कभी हरिनाम का त्याग नहीं करते।यह बात अलग है कि सिद्धवस्था में ही शुद्ध नाम होता है। शुद्ध नाम अन्य शुभ कर्मों से अति विलक्षण है।यही नाम के स्वरूप का अपूर्व लक्षण है।वेदों में ऐसा कहा गया है कि साधन काल मे ही श्रीगुरुदेव की कृपा से ऐसा विलक्षण ज्ञान प्राप्त होता है ।साधनावस्था में जिसको यह ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है वह सभी नाम अपराधी हैं।इस विश्वास के साथ जो हरिनाम करते हैं शुद्ध हरिनाम बहुत जल्दी ही उनमे उदित हो जाता है तथा वह पूर्ण आनन्द स्वरूप श्रीहरिनाम के रस का पान करते रहते हैं।

इस अपराध से बचने का उपाय

वैष्णव अपराध रूपी दुष्कृति के कारण यदि किसी साधक की अन्य शुभ कर्मों के साथ हरिनाम में समबुद्धि होती है तो उस साधक को चाहिए कि इस दोष को समाप्त करने का पूरा प्रयत्न करें।तभी साधक की श्रीहरिनाम के प्रति शुद्ध बुद्धि होगी तथा उसे श्रीकृष्ण प्रेम रूपी धन की प्राप्ति होगी। नामाचार्य

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु !चारों वर्णों से बाहर यदि अन्त्यज जाति का व्यक्ति भी शुद्ध नाम परायण हो तथा कोई पवित्र भाव से उसकी चरण रज लेकर अपने शरीर पर लगाए , उसका जूठा प्रसाद सेवन करे तथा उसके चरणों का जल पिये तो ऐसा करने से उसकी शुद्ध हरिनाम में मति हो जाएगी । बहुत से भक्तो का कहना है कि इस प्रकार से श्रीचैतन्य महाप्रभु जी के पार्षद श्रील कालिदास जी की दुष्कृतियों की समाप्ति हुई थी और उन्हें पुनः भगवान की कृपा प्राप्त हुई थी।

बड़ी दीनता के साथ श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि -हे प्रभु ! मैं जड़ बुद्धि हूँ और एकमात्र नाम का ही कीर्तन करता हूँ परन्तु अभी तक नाम चिंतामणि तत्व को प्राप्त नहीं कर पाया।

हरिदास ठाकुर जी की हरिनाम में निष्ठा

श्रीहरिदास ठाकुर जी महाप्रभु जी के चरणों मे यही विनय करते हैं कि - हे प्रभु ! आप कृपा करके हरिनाम के रूप में मेरी जिव्हा पर नृत्य करते रहना।आप मुझे संसार में रखो या अपने धाम में , जहां आपकी इच्छा हो मुझे वहां रखो परन्तु मुझे कृष्ण नामामृत का पान अवश्य करवाते रहना।जगत के जीवों को हरिनाम देने के लिए ही आपका अवतार हुआ है और नाम

ग्रहण करने वालों में से मैं भी एक हूँ , इसलिए प्रभु मुझे अवश्य अंगीकार करना।मैं तो अधम हूँ परन्तु आप तो अधमों के तारण हार हो।

हे पतितपावन ! हम दोनों का सम्बन्ध भी बड़ा विचित्र है। मेरा और आपका सम्बन्ध कभी टूटने वाला नहीं है क्योंकि मैं अधम हूँ और आप अधम तारणहार हो।आपसे मेरा नित्य सम्बन्ध है इसलिए मैं आपसे हरिनाम अमृत प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ।

कलियुग में हरिनाम ही युग धर्म क्यों

कलियुग में दूसरे सभी कार्य दुःसह हो गए हैं, अतः जीव पर करुणा करने के लिए हरिनाम ही युग धर्म के रूप में प्रकट हुआ है।

श्रीभक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी के जो दास हैं तथा जो भगवत भक्ति का रसास्वादन करते हैं , वे अकिंचन ही श्रीहरिनाम चिंतामणि का गान करते हैं।

एकादश अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 20

अध्याय 12

प्रमाद नामक नामापराध

श्रीमन महाप्रभु जी की तथा उनके भक्तों की जय हो, जिनकी कृपा से संकीर्तन करता हूँ।

प्रमाद नामक अपराध –-

श्रीमन महाप्रभु जी को श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं -हे प्रभु ! आपने यहां श्रीजगन्नाथ पुरी में सनातन गोस्वामी जी को एवम दक्षिण भारत भृमण के समय गोपाल भट्ट गोस्वामी जी को प्रमाद रहित श्रीकृष्ण भजन करने की शिक्षा दी थी। आपने नामापराध के अंतर्गत प्रमाद की गिनती की थी। इस नाम अपराध के बारे में बोलते हुए आपने कहा था कि अन्य अन्य नाम अपराधों को छोड़कर यदि कोई साधक हरिनाम करता है

और उसके हृदय में श्रीकृष्ण प्रेम उदित नहीं होता , तब समझना होगा कि प्रमाद रूपी अपराध उदित हो गया है जिसके कारण प्रेम भक्ति की साधना में बाधा उतपन्न हो रही है।

असावधानी को ही प्रमाद कहते हैं

प्रमाद का मुख्य अर्थ असावधानी ही है। इसी से सारे अनर्थ उदित होते हैं।विद्वान वैष्णव लोग कहते हैं कि प्रमाद भी तीन प्रकार के होते हैं--साधारण भजन मरण उदासीनता अर्थात निष्ठा का अभाव , आलस्य तथा मन का दूसरी और जाना।

अनुराग होने तक पूरे यत्न के साथ हरिनाम करना आवश्यक है

किसी भाग्य से किसी जीव के अंदर यदि श्रद्धा उतपन्न होती है तो वह जीव हरिनाम लेता है । हरिनाम करते हुए जब वह बड़े यत्न के साथ भगवान को स्मरण करता हुआ , भगवान के नाम मे मन लगाकर तथा सँख्यापूर्वक हरिनाम करता है तो उसका हरिनाम में हरिनाम उतपन्न होता है । हमें यह याद रखना चाहिए कि जब तक हमारा हरिनाम में अनुराग उतपन्न नहीं होता , तब तक बड़े यत्न के साथ हरिनाम करते रहना चाहिए।

यत्न के अभाव में साधक का चित्त स्थिर नहीं होता

साधक का मन स्वाभाविक ही संसार के विषयों में आसक्त रहता है जो हरिनाम करते समय श्रीहरि की बजाय

कहीं और अनुरक्त रहता है। ऐसे में साधक हरिनाम तो प्रतिदिन जप्त है परंतु हरिनाम जपते समय उसका चित्त हरिनाम में तो उदासीन रहता है तथा कहीं और मग्न रहता है। अब आप ही बताओ , हे गुणधर्म गौर हरि! जब किसी का चित्त कहीं और हो तथा दूसरी ओर से वह हरिनाम भी कर रहा हो तो उसका मंगल कैसे होगा। ये ठीक है कि वह गिनकर एक लाख माला कर लेता है परंतु इतना सब करने पर भी उसके हृदय में हरिनाम के अप्राकृत रस की एक बूंद का आस्वादन भी नहीं होता । हे प्रभु ! यही वो प्रमाद रूपी अपराध है जो असावधानी से होता है । जहां तक संसार के विषयी लोगों की बात है उनके लिए हरिनाम में मन लगाना बहुत ही कठिन है।

यत्न करने की विधि

थोड़ी देर के लिए विषय भोगों की सारी चिंताओं को छोड़कर साधक को चाहिए कि वह साधु सँग में रहकर एकांत भाव से हरिनाम करे। ऐसा करने से साधक का प्रमाद रूपी दोष खत्म हो जाता है।इतना ही नहीं धीरे धीरे उसका चित्त श्रीकृष्ण नाम

मे स्थिर होने लगता है और उसके हृदय में निरन्तर श्रीहरिनाम का दिव्य रसास्वादन चलने लगता है। तुलसी के वृक्ष के पास अथवा श्रीकृष्ण लीला के स्थान अथवा भगवत भक्तों के पास बैठकर यदि उस प्रकार हरिनाम किया जाए जैसा कि पूर्व समय में भगवान के प्रेमी भक्तों ने किया तथा साथ ही हृनसँ करने के समय को हरिनाम चिंतन करते करते धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए तो इससे जल्दी ही सांसारिक भोग वासनाओं से छुटकारा हो जाता है।

अन्य क्रिया

भगवत भक्तों के तरीके से किसी एकांत स्थान पर बैठकर , अपने कमरे के दरवाजे बंद करके अथवा अपनी आंख, कान , नाक को ढक कर करने से जल्दी ही साधक की हरिनाम में निष्ठा तथा रुचि होने लगती है तथा साथ ही साथ साधना में आया उदासीन भाव भी खत्म हो जाता है।

आलस्य रूपी रुकावट के लक्षण

हरिनाम की साधना में आलस्य के कारण रुचि नहीं होती। भगवत स्मरण के समय यदि यह आलस्य आ जावे तो इस दोष के कारण साधक के हृदय में हरिनाम का रस प्रकाशित नहीं होता । दुनिया के फालतू कार्यों में जैसे उनका समय बर्बाद न

हो, इस बात को ध्यान में रखते हुए भगवान के भक्त हर समय भगवान का ध्यान करते रहते हैं , परन्तु साधक के जीवन मे यह तभी होता है जब साधक को ऐसे साधु की संगति मिल जाये जो हर समय हरिनाम करता रहता है तथा हर समय इसी रस में डूबा रहता है तथा साथ ही वह साधु हरिनाम के सिवा कुछ भी नहीं चाहता।

साधक को चाहिए कि ऐसे दुर्लभ साधु की खोज करके उसकी संगति में उठे बैठे। सच्चे साधु के आदर्श चरित्र को देखकर वैसा आचरण करते रहने से साधक का चित्त आलस्य का त्याग कर देता है। स्वभाव से ही अच्छे साधु अपने अनमोल समय को व्यर्थ नहीं गंवाते। आठ साधु का आदर्श चरित देखने से यह निश्चित है कि साधक की रुचियों में भी इस प्रकार का बदलाव आता रहेगा। इतना ही नहीं साधु का आदर्श चरित देखकर साधक के मन में भी आता है कि कब मैं इनकी तरह बन पाऊंगा। कब मेरे जीवन में ऐसा सौभाग्य उदित होगा कि मैं भी इन साधु भक्तों की तरह हृदय में भगवान का स्मरण करूंगा व मुख से भगवत नाम कीर्तन करूंगा। साधक का यही उत्साह उसके आलस्य को खत्म करके उससे निरन्तर श्रीकृष्ण स्मरण करवायेगा। वह स्वयम मन ही मन में यह धारणा बनाने लगता है कि आज मैं एक लाख हरिनाम करूंगा तथा धीरे धीरे मैं

प्रतिदिन तीन लाख किया करूंगा। भक्तों के बढ़िया आचरण को देखकर साधक के मन में हरिनाम की निश्चित संख्या करने का व उस संख्या को लगातार बढ़ाने का आग्रह पक्का होता रहता है। उसे यह भी मालूम नहीं पड़ता कि साधु भक्तों की कृपा से बड़ी जल्दी उसके अंदर भरा आलस्य भाग जाता है।

विक्षेप से उतपन्न बाधा

साधक के हृदय में आये विक्षेप से जो प्रमाद रूपी दोष होता है , बड़ी कोशिशों के बाद जाकर वह खत्म होता है। दौलत, स्त्री, मान सम्मान की भावना तथा धूर्तता ही उस आलस्य के अड्डे उपरोक्त चीजें जब साधक के हृदय को अपनी ओर खींचती है तो स्वाभाविक ही हरिनाम में रुकावट आ जाती है।

विक्षेप को त्यागने का उपाय

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि सौभग्यशाली साधक को चाहिए कि वह कनक , कामिनी व प्रतिष्ठा इत्यादि भावनाओं को त्यागकर श्रेष्ठ वैष्णवों के आचरण के अनुसार साधना करने का प्रयत्न करें। इसमे सबसे पहले वह एकादशी, जन्माष्टमी व वैष्णवों की आविर्भाव तिरोभाव आदि तिथियों में अपने भोग

विलास के चिंतन का परित्याग करते हुए रात दिन साधु सँग में रहकर हरिनाम करे। उसके बाद वह बड़े उत्साह के साथ भगवान के वृन्दावन , नवद्वीप तथा जगन्नाथ पुरी इत्यादि धामों में भगवान के भक्तों के साथ विभिन्न महोत्सवों में शामिल होवे तथा श्रीमद भगवत गीता , श्रीमद भागवत तथा वैष्णव ग्रंथों का अनुशीलन व स्मरण कीर्तन करता रहे । धीरे धीरे उपरोक्त कार्यों के समय को स्वेच्छा से बढ़ाता रहे तथा श्रीहरि के महोत्सव में अपने आपको रमाये रखे।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि इस प्रकार साधना करते रहने से साधक के चित्त में श्रेष्ठ रस उदित होने लगता है , जिससे दुनियावी निकृष्ट रस से मन अपने आप ही शत प्रतिशत हटने लगता है । ऐसे समय में यदि साधक महाजनों के मुख से भगवान के संगीतमय कीर्तन को सुने तो वह कीर्तन उसके मन व कानों को दिव्य रस का आस्वादन करवाकर भगवान में मुग्ध कर देगा । दुनिया के तुच्छ विषय भोगों की लालसा साधक के चित्त से कब की खत्म हो गयी , ये उसे मालूम भी नहीं पड़ेगा तथा साथ ही महाजनों के मुख से सुना वह कीर्तन हमेशा के लिए साधक के चित्त को भगवान में स्थापित कर देगा , अतएव यदि साधक अपने भीतर भरे प्रमाद को हटाने के लिए यह रास्ता अपनाए तो यह दिव्य मार्ग उसके चित्त को स्थिर करके उसे चिर दिन के लिए रसानन्द में डुबो देगा।

आग्रह

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हरिनाम की संख्या के लिए आपने जो संकल्प लिया है , उसमें ढीलापन न हो इसके लिए बार बार विशेष ध्यान देना होगा। साथ ही सतर्क होकर प्रमाद हटाने के लिए हरिनाम संकीर्तन करना होगा। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि साधक को चाहिए कि वह संख्या बढ़ाने के चक्र में ज्यादा न पड़े। संख्या बढ़ाने की बजाए यदि स्पष्ट रूप से हरिनाम का उच्चारण हो इसकी ओर ध्यान दे । ऐसा होने से भगवान श्रीहरि की कृपा से उसका निरन्तर हरिनाम होने लगेगा।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु जी से कहते हैं कि हे प्रभु! आप मुझ पर ऐसी कृपा करना जैसे ये प्रमाद रूपी अपराध मुझे हरिनाम के रसास्वादन में बाधा न पहुंचा सके।

प्रक्रिया

श्रील ठाकुर जी कहते हैं कि भक्तों को चाहिए कि कुछ समय के

लिए एकांत में बैठकर एकाग्र मन सड़ नाम स्मरण का प्रयास अवश्य करे। हे गौरहरि ! आपके चरणों में मेरी प्रार्थना है कि आप मुझ पर ऐसी कृपा करें कि भगवत भावों में डूबकर स्पष्ट हरिनाम के दिव्य अक्षरों का हमेशा उच्चारण कर सकूं क्योंकि ऐसा हरिनाम दुनिया में कोई भी अपनी कोशिश से नहीं कर सकता।आपकी कृपा के बिना यह सम्भव ही नहीं है।

हरिनाम करने में शेष यत्न की व आग्रह की अति आवश्यकता होती है । निरन्तर हरिनाम करने के लिए यह अति आवश्यक है अन्यथा साधक से अपराध होते रहेंगे।अतः साधक को चाहिए कि वह भगवान के प्रति व्याकुल हृदय से कृपा मांगता रहे । श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु ! आप तो स्वभाव से ही कृपामय हैं , साधक के द्वारा व्याकुल भाव से प्रार्थना करने पर आप उस पर कृपा कर ही देते हैं । ऐसे में प्रभु यदि आपकी कृपा को प्राप्त करने के लिए यदि प्रयत्न न करूंगा तो गौरहरि मैं स्वयम ही भाग्यहीन हूँ।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि श्रीहरिनाम चिंतामणि जिनका अलंकार है , उन श्रीहरीदास ठाकुर जी के चरण कमलों में ही मेरा भरोसा है।

द्वादश अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 21

अध्याय 13

हरिनाम की महिमा सुनते हुए भी या दीक्षित होते हुए भी अधिकांश विषयी लोग इस नाशवान शरीर में मैं और मेरेपन की बुद्धि बनाये रखते हैं, जो कि गलत है व ऐसी बुद्धि भक्ति पथ से भृष्ट कर देती है तथा यह नामपराधों में से एक नामापराध है।

श्रीगदाधर पंडित जी की जय हो, श्रीगौरांग महाप्रभु जी की जय हो, सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी की जय हो तथा महाप्रभु जी के समस्त भक्तवृंद की जय हो जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर महाशय जी भगवत प्रेम में गदगद होकर श्रीमन महाप्रभु जी के श्रीचरणों में अंतिम नामापराध विनय करते हैं । वे कहते हैं कि -हे प्रभु ! इस अपराध के बारे में सुनें , यह अपराध सबसे निकृष्ट अपराध है । इस अपराध के कारण भी साधक के हृदय में भगवत प्रेम उदय नहीं होता ।

हरिनाम में शरणागति की आवश्यकता

ठाकुर श्रीहरिदास जु कहते हैं कि सज्जन व्यक्तियों को चाहिए कि वे पहले वर्णित नव अपराधों को छोड़कर श्रीहरिनाम में शरणागत हों। हे गौरहरि ! हमारे शास्त्रों में 6 प्रकार की शरणागति के बारे में कहा गया है । हे प्रभु ! मेरी तो सामर्थ्य नहीं कि मैं विस्तृत भाव से शरणागति का वर्णन कर सकूँ , तब भी आपकी प्रसन्नता के लिए संक्षेप में कहना चाहूंगा।

शरणागति के प्रकार

पहली व दूसरी शरणागति है कि संसार में रहने के लिए जो विषय भगवान की भक्ति के अनुकूल हों , उन्हें लेना तथा जो विषय भगवान की भक्ति के अनुकूल न हों उन्हें छोड़ देना।

भगवान श्रीकृष्ण ही मेरे रक्षाकर्ता हैं -इस प्रकार की सोच रखना , भगवान श्रीकृष्ण ही मेरे पालनहार हैं -इस प्रकार की भावना रखना , अपने अंदर हमेशा दीनता का भाव बनाये रखना तथा अपना सब कुछ भगवान श्रीकृष्ण के चरणों में निवेदन कर देना ही शरणागति के बाकी चार लक्षण हैं। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि दुनिया मे सब भोजन व दवाई इस भावना से स्वीकार करना कि यह सभी इस शरीर की रक्षा के लिए जरूरी हैं।क्योंकि जब मैं ही जिंदा न रहूंगा तो मुझसे भजन ही न हो पायेगा । अपने जीवन की गाड़ी को चलाने के लिए केवल उन्हीं विषयों को ग्रहण करो जो श्रीकृष्ण को भाते हैं । भक्ति के प्रतिकूल विषय जब आपके सामने आते हैं तो उनके प्रति अरुचि दिखाते हुए अवश्य ही उन्हें त्याग देना चाहिए।इस बात को अपने हृदय में बिठा लेना चाहिए कि श्रीकृष्ण के बिना मेरा रक्षाकर्ता तथा पालनकर्ता कोई और नहीं हैं।हृदय में हर समय दीनता के ऐसे भाव रहने चाहिए कि मैं तो सबसे निकृष्ट हूँ , अधम हूँ तथा मुझमें कोई गुण नहीं है। भगवान श्रीकृष्ण के संसार में मैं उनका नित्य दास हूँ , उनकी इच्छा के अनुसार कार्य करना ही मेरा प्रयास है।

मैं कर्ता हूँ , मैं दाता हूँ , मैं ही अपने परिवार का पालन करने वाला हूं , ये मकान , ये शरीर, ये सन्तान तथा यह स्त्री सब मेरे हैं।मैं ब्राह्मण हूँ तथा मैं शुद्र हूँ , मैं इसका माता पिता हूँ , मैं राजा हूँ या मैं प्रजा हूँ । अपनी संतानों का सब कुछ तो मैं ही हूँ इत्यादि इस प्रकार की बुद्धि को छोड़कर अपने ध्यान को , अपनी बुद्धि को , अपनी मति को श्रीकृष्ण में लगाये रखना । इस प्रकार की भावना करना कि श्रीकृष्ण ही सबके मालिक हैं , वास्तविक कर्ता तो वे ही हैं , उनकी इच्छा ही बलवान है।

ठाकुर हरिदास जी कहते हैं कि इस प्रकार की भावना बनाकर रखना कि अपने जीवन मे मैं वही कार्य करूंगा जो श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुकूल हों। अपनी इच्छा के अनुसार तो मैं कुछ सोचूंगा भी नहीं। श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुसार ही मेरा जीवन तथा मेरा परिवार चलेगा और उनकी इच्छा अनुसार ही मैं भव सागर से पार होऊँगा। चाहे मैं दुख में रहूँ या सुख में लेकिन मैं सब कुछ श्रीकृष्ण की इच्छा मानकर स्वीकार करुंगा। श्रीकृष्ण अपनी इच्छा अनुसार संसार के सब जीवों पर अपनी दया बिखेरते हैं । मेरी सुख सुविधाएं तथा मेरे कर्म भोग सब श्रीकृष्ण की इच्छा अनुसार ही होने हैं , यहां तक कि मेरा वैराग्य भी श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुसार होगा।

शरणागति होने से ही आत्मनिवेदन होता है

सरल भाव से जब उक्त शरणागति के भाव किसी के हृदय में उदित होते हैं , तब उसे आत्मनिवेदन कहा जाता है।

शरणागति के बिना हरिनाम करते हुए जो होता है

छः प्रकार की शरणागति जिसकी नहीं होती , वह तो अधम है । मैं तथा मेरे के दोष में ही उस बिचारे की बुद्धि उलझी होती है।ऐसी अवस्था मे वह अपने को कर्ता मानता हुआ कहता है कि यह सब संसार मेरा ही है।कर्मो के दुख सुख सब मेरे ही भोग है ।मैं अपना रक्षक व पालक हूँ ।ये मेरी पत्नी , यह मेरा भाई तथा यह मेरे लड़के लड़की हैं।मैं रुपया कमाता हूँ । मेरी कोशिशों से ही सब अच्छे अच्छे काम हो रहे हैं । श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि भगवान से विमुख व्यक्ति की शरीर में तथा शरीर से सम्बंधित व्यक्ति तथा वस्तुओं में मेरी बुद्धि होने के कारण वह अपने दिमाग को बड़ा समझता है। वह सोचता है कि मेरे दिमाग के कारण ही शिल्पकला तथा विज्ञान इतनी उन्नति कर रहे हैं।इसी अभिमान में वह दुष्ट व्यक्ति भगवान की शक्तियों को स्वीकार नहीं करता। हरिनाम की महिमा सुनते हुए भी वह उसमें विश्वास नहीं करता। हां , लोकाचार की दृष्टि से देखा देखी कभी कभी श्रीकृष्ण का नाम उच्चारण कर लेता है। अक्सर धर्मध्वजी तथा दुष्ट प्रकृति के लोग ऐसा करते हैं।कृष्ण नाम उच्चारण करते हुए भी श्रीकृष्ण नामामृत में उनकी रुचि

नहीं होती। श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हेला से हरिनाम का उच्चारण करने से अनायास ही मुख से श्रीकृष्ण नाम निकल जाए तो उसे कुछ न कुछ पुण्य तो अवश्य मिलता है परंतु भगवत प्रेम नहीं मिलता। क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिंतामणि

भाग 22

अध्याय 13

इसका मूल कारण क्या है

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हरिनाम की महिमा सुनते हुए भी हरिनाम में विश्वास न करना व हरिनाम की महिमा सुनते हुए भी नाशवान शरीर मे मैं और मेरे की बुद्धि बनाये रखना जो दसवां अपराध है। ऐसा अपराध माया में फंसे होने के कारण ही होता है।

इस दोष को त्यागने का उपाय

अतः हमें एक ऐसे निष्किंचन भक्त की खोज करनी होगी

जिसके अंदर दुनिया के सारे भोगों की जरा सी भी कामना न हो तथा जो हर समय विषय भोगों को छोड़कर नाम संकीर्तन करता रहता है। ऐसा निष्किंचन भक्त जब मिल जाये तो साधक को उसकी संगति में रहना होगा तथा अपनी विषय वासनाओं को छोड़कर उसकी सेवा करनी होगी।ऐसा करने से साधक के अंदर धीरे धीरे हरिनाम में रुचि होने वाले भावों का संचार होगा तथा मैं और मेरेपन को छोड़कर वह माया से मुक्त हो जाएगा। हरिनाम की महिमा सुनकर मैं और मेरे के भावों को छोड़कर हरिनाम की शरण लेना ही भक्त का स्वाभाविक लक्षण है। जो भक्त हरिनाम के शरणागत होकर श्रीकृष्ण नाम करते हैं , वे ही श्रीकृष्ण प्रेम रूपी महाधन को प्राप्त कर लेते हैं।

दस अपराध से रहित व्यक्ति के लक्षण

अतएव बड़े यत्न के साथ साधु निंदा को छोड़कर , शुद्ध मन से भगवान के श्रेष्ठत्व को समझें। ये मानें कि भगवान विष्णु ही परम तत्व हैं। जो हरिनाम के गुरु हैं, जो हरिनाम की महिमा बखान करने वाले शास्त्र हैं , उन्हें सर्वोत्तम समझें तथा भगवान के यह नाम विशुद्ध हैं व चिन्मय हैं इसे हृदय से मानें। साधकों को चाहिए कि वह पापों की लालसा व पापों के कारण को यत्न के साथ छोड़ें तथा जो श्रद्धालु लोग हैं उनके बीच शुद्ध हरिनाम का प्रचार करें । शरणागत भक्त के इलावा सभी शुभ कर्मों से अपने आप को हटाकर तथा प्रमाद को छोड़कर हर समय

भगवान का स्मरण करता है।

अपराध रहित हरिनाम करने से थोड़े ही दिनों में भावों का उदय हो जाता है

नामाचार्य हरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि भगवान के शरणागत होकर जो हर समय हरिनाम करता है , इस सारे त्रिभुवन में वह ही धन्य है तथा ऐसा हरिनाम करने वाला भाग्यवान है।सचमुच ऐसे व्यक्ति को ही गुणों की खान कहा जायेगा तथा ऐसा व्यक्ति श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त करने के योग है। हरिनाम करते करते साधक के हृदय में थोड़े ही दिनों में भाव उदित होने लगते हैं तथा उसके कुछ समय बाद उसे श्रीकृष्ण प्रेम की प्राप्ति हो जाती है।

उन्नति का क्रय

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि शरणागत भाव से निरन्तर हरिनाम करने वाले साधक अक्सर थोड़े ही दिनों बाद ही भगवान श्रीकृष्ण की इच्छा से भाव की स्थिति से भगवत प्रेम की स्थिति पर पहुंच जाते हैं। तमाम शास्त्रों के अनुसार भगवत प्रेम की स्थिति प्राप्त करना ही सर्वसिद्धि है। हे प्रभु ! आपने ही

तो कहा था कि जो भक्त अपराध रहित होकर हरिनाम करेगा , वही प्रेम धन को प्राप्त करेगा।

व्यतिरेक भाव से इसकी चिंता

श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि यदि कोई अपराधों को न छोड़कर हरिनाम करता भी है तो हजारों साधन करने पर भी उसे प्रेम रूपी धन की प्राप्ति नहीं होती। ज्ञानी की ज्ञान से मुक्ति तथा कर्मी को कर्म भोगों से मुक्ति की प्राप्ति तो हो जाती है, परन्तु सुदुर्लभा भक्ति केवल शुद्ध साधुओं के आनुगतय में निर्मल भाव से रहकर हरिनाम की साधना करने से प्राप्त होती है जो कि जीवों का परम लक्ष्य है। शुद्ध भक्ति की तुलना में मुक्ति और भोग नगण्य हैं। साधु सँग से अति ही अल्प समय में तथा अति ही अल्प साधना द्वारा भक्ति लता भक्तों को फल देती है।

भजन नैपुण्य

दसों अपराधों को छोड़कर हरिनाम करना ही भजन साधन की निपुणता है।

नाम अपराध का गुरुत्व

यदि किसी को भक्ति प्राप्त करने का लोभ है तो उसे दसों नामपराधों को छोड़कर हरिनाम करना चाहिए। एक एक अपराध से सतर्क रहकर , चित्त में विलाप करते हुए यत्न से नाम करना चाहिए।हरिनाम प्रभु के चरणों मे निवेदन करना चाहिए कि आप कृपा करके मेरे सभी अपराधों को ध्वंस कर दो क्योंकि हरिनाम प्रभु की कृपा से सभी अपराध ध्वंस होगें। नाम प्रभु की कृपा के बिना अन्य किसी भी प्रकार के प्रायश्चित से अपराध श्रय नहीं हो सकते।

नाम अपराधों को त्यागने का उपाय

भोजन व विश्राम आदि केवल दैहिक कार्यों को छोड़कर बाकी किसी भी काम में समय को व्यर्थ न गंवाकर हरिनाम करते रहने से सब अपराध चले जाते हैं।निरन्तर नाम करते रहने से अपराध करने का अवसर ही नहीं आता। यदि कभी अपराध हो भी जाये तो रात दिन नाम करते हुए प्रायश्चित करते रहना चाहिए। इससे अपराध नष्ट हो जाते हैं तथा हरिनाम का मुख्य फल मिलता है। अपराध नष्ट होने से ही शुद्ध हरिनाम उदित होता है जो कि भावमय तथा प्रेममय होता है।

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी बड़ी दीनता के साथ श्रीचैतन्य

महाप्रभु जी के चरणों में प्रार्थना करते हुए कहते हैं कि महाप्रभु जी आप मुझ पर ऐसी कृपा करो मैं सदा सर्वदा इन सभी अपराधों से बचकर शुद्ध नाम रस में ही मगन रहूँ।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि मैं नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी की कृपा से ही कौतूहल पूर्वक श्रीहरिनाम चिंतामणि का गान करता हूँ।

त्रयोदश अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

*श्रीहरिनाम चिंतामणि *

भाग 23

अध्याय 14

श्रीगदाधर पंडित जी तथा श्रीगौरांग महाप्रभु जी की जय हो। श्रीमती जान्ह्वी देवी जी के प्राण स्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की जय हो । सीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी की जय हो तथा

श्रीवास आदि सभी भक्तों की जय हो।

श्रीहरिदास ठाकुर जी को हरिनाम का आचार्य कहा जाता है

श्रीमन महाप्रभु जी ने कहा -मेरे प्रिय भक्त हरिदास !आपने सभी प्रकार के नामपराधों के तत्व को प्रकाशित किया है, उससे कलियुग के सभी जीवों को मंगल की प्राप्ति होगी । इसलिये तुम नाम तत्व के प्रतिष्ठित आचार्य हो।

हे महापुरष ! तुम्हारे मुख से नाम तत्व श्रवण करके मैं ही उल्लसित हो गया हूँ। आप आचरण में तथा प्रचार में भी सुनिपुण हो। आप हरिनाम रूपी धन के धनी हो। श्रीरामानन्द राय जी ने मुझे रस तत्व की शिक्षा दी तथा आपने मुझे हरिनाम की महिमा सिखाई। आप अब सेवा अपराधों के बारे में बताइए।ये कितने प्रकार के होते हैं ताकि इसको सुनकर जीवों के चित्त में भरा अंधकार खत्म हो।

श्रील हरिदास ठाकुर जी बोले -महाप्रभु ! आप एक ऐसे विषय पर मुझसे जिज्ञासा कर रहे हैं जिसे केवल सेवक लोग ही जानते हैं । मैं तो हर समय श्रीहरिनाम के आश्रय में रहता हूँ , इसलिए इस विषय के बारे में मैं क्या बोलूं , मुझे समझ नहीं आ

रहा । परन्तु फिर भी मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता । सलिये आप मुझसे जो बुलवाएँगे मैं वही विस्तार से कहूंगा।

सेवा अपराधों की संख्या

हे गुनमणि गौरहरि! शास्त्र के अनुसार सेवा अपराध अनन्त प्रकार के होते हैं और यह सभी श्रीविग्रह से ही सम्बंधित होते हैं। किसी किसी शास्त्र में 32 प्रकार के तथा किसी किसी शास्त्र में 50 प्रकार के सेवा अपराधों का वर्णन है।

सेवा अपराधों के चार विभाग

बुद्धिमान व्यक्ति शास्त्रों की सहायता से इन सभी सेवा अपराधों को चार विभागों में विभाजित करते हैं।

1 श्रीमूर्ति सेवक निष्ठ अर्थात जो मूर्ति की सेवा करते हैं , उनके सम्बन्ध में अपराध

2 श्रीमूर्ति स्थापक निष्ठ अर्थात जो श्रीमूर्ति की स्थापना करते हैं , उनके सम्बन्ध में अपराध

3 श्रीमूर्ति दर्शननिष्ट अपराध अर्थात जो श्रीमूर्ति के दर्शन करते हैं उनके कुछ अपराध

4 सर्व निष्ठ अपराध अर्थात इन सबके लिए कई तरह के अपराध

सेवा अपराधों के प्रकार

पादुका या चप्पल पहनकर कोई मन्दिर में जाये, किसी वाहन में चढ़कर किसी मंदिर के सामने जाए, नंगे बदन मन्दिर जाए, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी आदि उत्सव न मनाए , मन्दिर के सामने जाकर भी भगवान को प्रणाम न करे , जूठे मुंह या अपवित्र अवस्था मे भगवान की वंदना करे, एक हाथ से भगवान को प्रणाम करे, भगवान की ओर पीठ दिखाकर घूम जाए, भगवान की ओर पैर पसारे, भगवान से ऊँचे आसन पर बैठ जाये , भगवान के खुले मन्दिर के आगे सोये या भोजन करे, भगवान के आगे झूठ बोले, भगवान के आगे जोर से चिल्लावे या गप्पें मारे, भगवान के सामने किसी को प्रणाम करे या आशीर्वाद दे, भगवान के मंदिर के आगे झगड़ा करे, भगवान के आगे उनकी भक्ति के विरुद्ध कार्य करे, क्रूर भाषा का उपयोग करे, दूसरों की निंदा करे, भगवान के मंदिर में कम्बल ओढ़ कर जाए, भगवान के आगे दूसरों की तारीफ करे, भगवान के सामने अश्लील बातें करे या अश्लील हरकतें करें, भगवान के सामने अधोवायु छोड़े, समर्थ होते हुए भी भगवान की सेवा में कंजूसी करे , भगवान को भोग लगाए बिना खाये, भगवान के मन्दिर के सामने इस प्रकार बैठे की उनकी पीठ भगवान की ओर हो , भगवान के

आगे किसी दूसरे का सम्मान तथा पूजा करे, गुरु की महिमा न बोलकर अपनी तारीफ करना तथा भगवान के आगे किसी देवता की निंदा करना - इस प्रकार के 32 अपराधों के बारे में महापुराण में वर्णन है।

दूसरे शास्त्रों के अनुसार सेवा अपराधों का वर्णन

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि हे प्रभु ! अन्य शास्त्रों में भी कुछ सेवा अपराधों का वर्णन है जिन्हें मैं आपकी इच्छा अनुसार वर्णन करूंगा। सेवा अपराध निम्न प्रकार के हैं -

धनी विषयी का दिया हुआ भोजन करना , अंधेरे में ही मन्दिर में प्रवेश करके श्रीविग्रह को स्पर्श करना , शास्त्रों में दी गयी विधियों को छोड़कर भगवान को भोग तथा वस्त्र आदि निवेदन करना , घण्टा या ताली इत्यादि बजाए बगैर मन्दिर का दरवाजा खोलना, कुत्ते की नज़रों में पड़े भोजन का भोग लगाना, भगवान का अर्चन करते हुए बिना किसी कारण के बोलना, पूजा करते हुए बीच में से ही उठकर मन्दिर से बाहर आ जाना , भगवान को माला दिए बगैर उनकी पूजा करना, सुगन्ध रहित फूलों के द्वारा श्रीकृष्ण की पूजा करना, बिना नहाए श्रीकृष्ण की पूजा करना, स्त्री सम्भोग तथा रजस्वला स्त्री का स्पर्श करके बिना नहाए मन्दिर में पूजा करना, शव को देखने तथा स्पर्श करने के बाद बिना नहाए मन्दिर में पूजा करना, श्मशान

घाट से वापिस लौट बिना नहाए पूजा करना, भगवान के सामने अधोवायु छोड़ना , अटपटे कपड़े पहनकर भगवान की पूजा करना, गुस्से में अथवा खाना पूरा हजम न हुआ हो या पान चबाते हुए मन्दिर में प्रवेश करना, अपने शरीर पर तेल मालिश करके मन्दिर में जाकर श्रीविग्रह को स्पर्श करना, अरण्ड के फूलों से भगवान का पूजन करना, आसुरिक काल जैसे आधी रात में अथवा जमीन पर बैठकर भगवान की पूजा करना, भगवान को शयन देते समय बाएं हाथ से उनका स्पर्श करना, बासी फूलों से या मांगकर लाये फूलों से भगवान का अर्चन करना, पूजा करते हुए डींगें मारना अथवा अनुचित बात बोलना , त्रिपुण्ड्र लगाकर भगवान श्रीकृष्ण की सेवा करना, बिना पैर धोए ही मन्दिर में पूजा के लिए जाना , अवैष्णव के हाथ से बनाये भोजन को भगवान के आगे निवेदन करना, अवैष्णवों को दिखा दिखाकर भगवान का अर्चन करना, भगवान की पूजा किये बगैर ही कपाली आदि तांत्रिकों का दर्शन करना , नाखून द्वारा स्पर्श हुए जल के द्वारा भगवान की पूजा करना, पसीने की बूंदों से मिले पानी से भगवान का अर्चन करना, भगवान श्रीकृष्ण की कसम खाना, भगवान को अर्पित माला व तुलसी इत्यादि को लांघना -इन सबसे सेवा अपराध बनते हैं ।भगवान की सेवा करने वाले साधक को चाहिए कि वह इन सबसे सावधान होकर भगवान की सेवा करे ताकि

भगवान की सेवा में कोई

बाधा न हो।

सेवक को सेवा अपराधों का त्याग करना चाहिए

श्रीमूति के सम्बन्ध में जिनका भजन और पूजन है , उनको सेवा अपराधों का त्याग करना चाहिए। वैष्णव सदा से ही सेवापराध तथा नामापराध का त्याग करके श्रीकृष्ण की सेवा का आस्वादन करते रहे हैं । सेवापराधों के सम्बन्ध में जिसकी जिस प्रकार की सेवा है , वह उसी प्रकार से होने वाले अपराधों का ध्यान रखे तथा नामापराधों का त्याग भी वैष्णव के लिए अति आवश्यक है।

भाव सेवा करने वाले साधक का अपराध न के बराबर होता है

जो साधक श्रीमूर्ति के विरह में एकांत में रोते रोते सदा भाव से भजन करते हैं , यह नाम अपराध तो उनके लिए भी वर्जनीय हैं।यह दस प्रकार के नामापराध ही सब क्लेशों का कारण हैं । नामापराध नष्ट होने से भावमयी सेवा हो सकती है। भावमयी सेवा करने से अपराध नहीं बनते।

नाम स्मरण वाले को ही भाव सेवा करनी चाहिए

हे प्रभु ! हरिनाम करते करते जब आपकी कृपा से किसी जीव का भाग्य उदित होता है , तभी नाम सेवा से उसकी भाव सेवा उदित होती है। भक्ति के जितने भी प्रकार के साधन हैं , सब अन्त में नाम मे प्रेम प्रदान करते हैं , इसलिए नाम साधक हरिनाम करता रहता है और उसी में मग्न रहता है। हरिनाम में मग्न रहने वाला साधक दूसरी किसी भी साधना को नहीं करता है।

श्रील भक्ति विनोद ठाकुर जी कहते हैं कि नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी की आज्ञा के प्रभाव से ही मैं , अकिंचन, श्रीहरिनाम चिन्तामणि का कीर्तन कर रहा हूँ।

चतुर्दश अध्याय विश्राम

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिन्तामणि

भाग 24

अध्याय15

भजन प्रणाली

श्रीगदाधर पंडित जी, श्रीगौरांग महाप्रभु जी व श्रीमती जान्हवा देवी के प्राणस्वरूप श्रीनित्यानन्द प्रभु जी की जय हो, श्रीसीतापति श्रीअद्वैताचार्य जी तथा श्रीवास आदि सभी गौर भक्तों की जय हो! जय हो ! जय हो!अन्य सभी पथों का परित्याग करके जो हरिनाम का जप या संकीर्तन करता है ऐसे भक्त की जय हो ! जय हो!

श्रीमन महाप्रभु जी बोले हे हरिदास! आपने इस पृथ्वी पर भक्ति के बल से दिव्य ज्ञान को प्राप्त किया है । चारों वेद आपकी जिव्हा पर नित्य नृत्य करते हैं तथा मैं आपकी कथा में सारे सुसिद्धान्तों को अनुभव करता हूँ।

नाम रस की जिज्ञासा

महाप्रभु जी बोले हे हरिदास! अब मुझे यह बताइए कि हरिनाम रस कितनी प्रकार के हैं और अधिकार के अनुसार साधकों को

किस प्रकार प्राप्त होंगे । हरिनाम के प्रेम में विभोर होकर नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी निवेदन करते हुए श्रीमहाप्रभु जी से कहते हैं कि हे गौरहरि ! आपकी प्रेरणा के बल से ही मैं इसका वर्णन करूंगा।

शुद्ध तत्व तथा पर तत्व के रूप में जो वस्तु सिद्ध है , वो रस के नाम से वेदों में प्रसिद्ध है। वह रस अखंड है , परब्रह्म तत्व है । यह चरम वस्तु असीम आनन्द का समुद्र है। शक्ति तथा शक्तिमान रूप से यह परमतत्व विद्यमान है। शक्ति तथा शक्तिमान रूप से इसमें कोई भेद नहीं है। केवल दर्शन में भेद दिखाई देता है। शक्तिमान अदृश्य से है जबकि शक्ति इसे प्रकाशित करती है। तीनों प्रकार की शक्ति (चित्त, जीव तथा माया शक्ति) ही विश्व को प्रकाशित करती है।

चित्त शक्ति के द्वारा वस्तु का प्रकाश

चित्त शक्ति के रूप में वस्तु का रूप, वस्तु का नाम, वस्तु का धाम, वस्तु की क्रिया तथा वस्तु का स्वरूप आदि प्रकाशित होते हैं। श्रीकृष्ण ही वह परम वस्तु हैं तथा उनका वर्ण श्याम है।गोलोक, मथुरा, वृन्दावन आदि श्रीकृष्ण के धाम हैं जहां वह

अपनी लीला प्रकट करते हैं। श्रीकृष्ण के नाम , रूप, लीला, धाम इत्यादि जो भी हैं सबके सब अखण्ड तथा अद्वय ज्ञान के अंतर्गत हैं।श्रीकृष्ण में जितनी भी विचित्रता है ये सब परा शक्ति के द्वारा ही की गई है। श्रीकृष्ण धर्मी हैं जबकि श्रीकृष्ण की परा शक्ति ही उनका नित्य धर्म है। धर्म तथा धर्मी में कोई भेद नहीं है। दोनो ही अखण्ड तथा अद्वय हैं। ये दोनों अभेद होते हुए भी विचित्र विशेषता के द्वारा इनमें भेद दिखाई पड़ता है। इस प्रकार की विशेषता केवल चिद जगत में दिखाई पड़ती है।

माया शक्ति का स्वरूप

जो छाया शक्ति श्रीकृष्ण की इच्छा से सारे विश्व का सृजन करती है , उस शक्ति को माया शक्ति के नाम स जाना जाता है।

जीव शक्ति

भेदाभेदमयी जीव शक्ति अर्थात भगवान श्रीकृष्ण की तटस्था शक्ति श्रीकृष्ण की सेवा के उद्देश्य से जीवों को प्रकाशित करती है।

दो प्रकार की दशा वाले जीव

जीव दो प्रकार के हैं - नित्य बद्ध तथा नित्य मुक्त। नित्य मुक्त जीवों का नित्य ही श्रीकृष्ण सेवा में अधिकार होता है जबकि नित्य बद्ध जीव माया के द्वारा संसार में फंस जाते हैं।जिनमें भी

बहिर्मुखी तथा अंतर्मुखी दो प्रकार के विभाग हैं।

जो अंतर्मुखी जीव हैं , वह साधु सँग के द्वारा श्रीकृष्ण नाम को प्राप्त करते हैं और श्रीकृष्ण नाम के प्रभाव से श्रीकृष्ण के धाम को जाते हैं।

रस और रस का स्वरूप

भगवान श्रीहरि ही अखण्ड रस के भंडार हैं और उस रस रूपी फूल की कली हरिनाम थोड़ी सी प्रस्फुटित हुई कली का रूप अति मनोहर होता है । गोलोक वृन्दावन में भी यही रूप श्यामसुंदर के रूप में विद्यमान है।

प्रभु के 64 गुण उस कली की सुंगन्ध हैं , वे गुण ही भगवान के नाम के तत्व को पूरे जगत में प्रकाशित करते हैं।

श्रीकृष्ण की लीला पूरी तरह से खिले हुए फूल के समान है । यह भगवत लीला प्रकृति से परे है , नित्य है तथा आठों पहर चलती है।

भक्ति का स्वरूप

जीवों पर हरिनाम की कृपा होने से यह कृपा संचित शक्ति और

आह्लादिनी शक्ति के समावेश से भक्ति के रूप में जीव के हृदय में प्रवेश करती है।

भक्ति क्रिया

वही सर्वेश्वरी शक्ति अर्थात भक्ति जीवों के हृदय में आविर्भूत होकर श्रीकृष्ण नाम के रसों की सारी सामग्री को प्रकाशित करती है। जीव भक्ति के प्रभाव से अपने चिन्मय स्वरूप को प्राप्त करता है और फिर उसी शक्ति के द्वारा ही उसमें रस प्रकाशित होता है।

रस के विभाव आलम्बन

रस के विभिन्न आलम्बन के विषय तो परमधन स्वरूप श्रीकृष्ण हैं एवम आश्रय उनके भक्त हैं । जब भक्त सदा ही हरिनाम लेता है तब हरिनाम की कृपा से वह भगवान के रूप, लीला , गुण आदि का आस्वादन करता है।क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिन्तामणि

भाग 25

अध्याय 15

रस का विभाव उद्दीपन

श्रीकृष्ण के रूप, गुण, इत्यादि सभी उद्दीपन हैं । यह आलम्बन तथा उद्दीपन दोनो विभाव के अंतर्गत हैं।

विभाव से अनुभाव प्रकट होता है

विभाव सम्पूर्ण होने से अनुभाव होता है। श्रीकृष्ण शुद्ध प्रेम के सभी विकार अनुभाव कहलाते हैं। प्रेम के यह सभी विकार शुद्धमय ही होते हैं।

जब संचारी भाव और सात्विक भाव के मिलन में विभाव काम करता हूं तब स्थायी भाव ही रस होता है

सभी शास्त्रों में कहा गया है कि जब संचारी भाव और सात्विक भाव के मिलन में विभाव काम करता हूं तब स्थायी भाव ही रस होता है

रस पान का क्रम

श्रीहरिदास ठाकुर जी भगवान श्रीचैतन्यदेव महाप्रभु जी को

कहते हैं कि मैं तो इस दिव्य रस को ही सभी का सार तथा सभी सिद्धियों का सार समझता हूँ -सभी शास्त्र कहते हैं कि ये रस ही जीवों का परम पुरुषार्थ है।भक्ति के उन्मुख जीव शुद्ध गुरु की कृपा से श्रीराधा कृष्ण जी के युगल मन्त्र को अर्थात हर कृष्ण महामन्त्र को सौभाग्य से प्राप्त करता है तथा परम् आदर के साथ तुलसी माला पर सँख्यापूर्वक नाम संकीर्तन करता है। एक ग्रंथि अर्थात 16 माला पच्चीस हजार हरिनाम से आरम्भ करके धीरे धीरे तीन लाख नाम का जप करें , इससे आपके मन की इच्छा पूर्ण हो जाएगी।

माला में जो भी निश्चित संख्या रखकर आप हरिनाम करते हैं उसमें से कुछ नाम आप थोड़ा जोर जोर से उच्चारण करते हुए करें।इससे सारी इंद्रियों में स्फूर्ति होगी तथा आनन्द से नृत्य करने को मन करेगा तथा तुम नाचोगे ।भक्ति के नो प्रकार के अंग श्रीहरिनाम का आश्रय करते हैं। फिर भी इनमें कीर्तन और स्मरण सर्वश्रेष्ठ है।

अर्चन मार्ग तथा श्रवण मार्ग के अधिकार भेद से क्रिया में भेद

अर्चन मार्ग में जिसकी गाढ़ रुचि है , उसे उसी से ही श्रवण कीर्तन की सिद्धि मिल जाएगी।हरिनाम में जिसकी एकांतिक

प्रीति होती है , वह केवल भगवान की कथा श्रवण , कीर्तन और स्मरण ही करेगा।

नाम श्रवण , कीर्तन और स्मरण में क्रम

हरिनाम का जप करने से अपने आप ही बड़ी आसानी सड़ भक्ति के अन्य अंग जैसे सेवा,प्रणाम, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन आदि का पालन होता है। नाम और नामी एक तत्व हैं, ऐसा विश्वास करके दस नामापराधों को त्याग कर जो साधक निर्जन स्थान में बैठकर भजन करता है, उस पर हरिनाम प्रभु दयावश होकर अपने श्यामसुंदर रूप में उसके हृदय में प्रकाशित हो जाते हैं। जब साधना में नाम और रूप एक ही जैसा अनुभव हो जाता है , तब नाम लेने से ही हर समय भगवान का रूप भी चित्त में आ जाता है । यही नहीं थोड़े दिन बाद जब भगवान का नाम, भगवान का रूप तथा भगवान के गुण एक ही हैं ऐसा अनुभव में आता है , तब हरिनाम उच्चारण करने के साथ साथ नाम , रूप तथा गुण एक साथ भक्त के चित्त में आ जाते हैं।

मन्त्र ध्यानमयी उपासना

मन्तरध्यानमयी इस हरिनाम कज उपासना में साधक प्राथमिक धारा के रूप में हरिनाम का ही विशेष रूप से चिंतन करता है। स्मरण के समय योगपीठ में कल्पवृक्ष के नीचे ब्रज के गोप व

गोपियों के बीच में श्रीकृष्ण का कौतूहल पूर्वक दर्शन करता है।तभी उसके शरीर मे सभी सात्विक भाव प्रकट होते हैं तथा वह भक्त भजन के आनन्द से पुलकित हो जाता है। धीरे धीरे जब हरिनाम अपनी सुगन्ध बिखेरता है तब भक्त उसमें प्रफुल्लित हो जाता है तथा तभी अष्टकालीय लीला उसके चित्त में प्रकाशित हो जाती है।

अपने रस की उपासना

अपने रस की उपासना तब उदित होगी जब साधक भगवान श्रीकृष्ण नन्दनन्दन के धाम में उनका दर्शन करता है, एवम सद्‌गुरु की कृपा से सिद्ध देह से सखियों सँग भगवान की लीला में प्रवेश करता है। महाभाविनी स्वरूप जो श्रीराधा जी हैं उनके आनुगतय में सदा भक्ति करता है। उस लीला में वह रसिक भक्त श्रीकृष्ण के मधुर रस की जो भक्त हैं - गोपियाँ, उनकी आज्ञा अनुसार भगवान श्रीराधाकृष्ण के युगल रूप की सेवा करता है और महाप्रेम में मगन हो जाता है।

हे गौरहरि! आपकी कृपा से इस साधना में भजन साधन और भजन की सिद्धि वाली स्थिति काफी नजदीक हो जाती है अर्थात दोनो की दूरियां काफी कम हो जाती हैं । यही नहीं आपकी कृपा से साधक का सूक्ष्म शरीर खत्म हो जाता है और

उसे स्वरूप की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

इससे श्रेष्ठ अवस्था का वर्णन नहीं किया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि इससे आगे तो मुझसे बोला नहीं जा रहा । इससे आगे की स्थिति तो आपकी कृपा से ही अनुभव हो सकती है। हे गौरहरि! यह ही सर्वश्रेष्ठ साधना व उज्ज्वल रस है , इससे बिल्कुल निश्चित है -श्रीकृष्ण प्रेम की भक्ति।

साधना के ग्यारह भाव

उज्ज्वल रस की साधना में ग्यारह प्रकार के भाव होते हैं जो कि बड़े ही चमत्कारिक होते हैं। वे हैं - सम्बन्ध, उम्र, नाम,रूप, यूथ प्रवेश, वेश, आज्ञा,वासस्थान, सेवा, पराकाष्ठा तथा पालय दासी भाव।

भाव की साधना में पांच दशाएं होती हैं

सम्पूर्ण साधना में तो उपरोक्त ग्यारह भाव होते हैं जबकि भाव की साधना करते समय साधक के जीवन मे निम्नलिखित पांच

दशाएं उदित होती हैं-श्रवण दशा, वरण दशा, स्मरण दशा,आपन दशा तथा सम्पति दशा।क्रमशः

जय निताई जय गौर

श्रीहरिनाम चिन्तामणि

भाग 26

अध्याय 15

श्रवण दशा

भाव मार्ग में अपने से जो श्रेष्ठ शुद्ध भावुक महापुरष होता है , वही गुरु कहलाता हौ। उनके मुख से भाव तत्व के बारे में श्रवण करने से श्रवण दशा प्राप्त होती है।

भाव तत्व

यह भाव तत्व दो प्रकार का होता है। पहला तो अपना सम्बन्ध ,

उम्र तथा नामादि एकादश भाव और दूसरा श्रीकृष्ण की लीला यह दोनों ही भाव तत्व हैं।

क्रम से वरण दशा की प्राप्ति

भगवान श्रीराधाकृष्ण जी जो अष्टकालीय लीला करते हैं , उन दिव्य अष्ट लीलाओं को श्रवण करके उन लीलाओं के प्रति लोभ होता है। लोभ होने के कारण साधक अपने गुरुदेव से लीला विषयक जिज्ञासा करता है। तब निष्कपट साधक पर कृपा करके उसके गुरुदेव उसकी साधना के अंतर्गत आये ग्यारह भावों का तथा साध्यावस्था की अष्टकालीन लीला का परस्पर मेल करवा देंगे। यह नहीं इस प्रकार वे उस योग्य शिष्य को भगवान श्रीराधाकृष्ण की लीला में प्रवेश करने का आदेश दे देंगे।आगे नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि अपने गुरुदेव द्वारा दिये सिद्ध भाव को शुद्ध रूप से श्रवण करके उसे अपने चित्त में बिठा लेना चाहिए।

अपनी रुचि गुरुदेव जी को बतानी चाहिए

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि वरण काल के समय अर्थात जब शिष्य को गुरु जी द्वारा ये सिद्ध भाव दिया

जा रहा हो , उस समय शिष्य को चाहिए कि भली भांति विचार करके सरल भाव से अपनी रुचि भी गुरुदेव के पादपदमों में निवेदन करे। शिष्य अपने गुरुदेव जी से कहे कि हे गुरुदेव! आपने मुझ पर जो कृपा करके मेरा परिचय दिया है , उसमे मेरी पूरी श्रद्धा व प्रीति है।परंतु स्वाभाविक रूप से मेरी इस बात में रुचि है। अतैव यदि मैं ठीक हूँ तो आप मुझे आज्ञा दें । आपकी आज्ञा ही मुझे शिरोधार्य होगी।

दूसरी रुचि होने से गुरु दूसरा भाव देंगे

वह भाव जो गुरु द्वारा प्रदान किया गया है , यदि उसमे आपकी रुचि नहीं है, तब निष्कपट होकर अपनी रुचि को गुरुदेव के समीप कहना चाहिए।गुरुदेव विचार करके आपको दूसरा भाव देंगे और उसी भाव मे रुचि होने से साधक अपने स्वरूप को जल्दी प्राप्त कर लेगा।

अपना सिद्ध भाव गुरु को बताना चाहिए

इस प्रकार गुरु शिष्य संवाद होने के उपरांत जब अपना सिद्ध भाव स्थिर हो जाये , तब शिष्य को चाहिए कि अपने गुरुदेव के चरणों मे पड़कर बड़ी दीनता के साथ विनती करते हुए उसी भाव की सिद्धि मांगे। गुरुदेव शिष्य का ऐसा भाव देखकर कृपा करके आदेश दे देंगे और तब वह शिष्य उस आदेश का पालन

करते हुए उसी भाव मे प्रवेश करेगा।

दृढ़ वरण

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि ऐसे समय मे अपने सद्‌गुरु के चरणों मे पड़कर विनती करनी चाहिए कि हे गुरुदेव! आपके द्वारा दिये हुए भाव को मैं वरण करता हूँ और अब यह भाव भी नहीं छोडूंगा। यह भाव जीवन और मरण दोनो समय ही मेरे साथ रहेगा।

भजन में रुकावट डालने वाले विचार

आपने सिद्ध ग्यारह भाव मे व्रती होकर सुदृढ चित से अपने भावों को याद करना चाहिए। स्मरण में एक बड़ी अच्छी बात है, वह यह कि साधक अपनी योग्यता के अनुसार निरन्तर स्मरण कर सकता है। हाँ, यदि अपनी योग्यता से रहित स्मरण होता है , तब कई युग साधना करने पर भी सिद्धि नहीं मिलती है।

आपन दशा

अपनी दशा में जब साधक स्मरण में दृढ़ प्रतिज्ञ हो जाता है तब जल्दी से साधक आपन दशा को प्राप्त कर लेता है। अपने शुद्ध भाव मे जब नित्य स्मृति होती चली जाती है , तब शीघ्र ही साधक की दुनियावी चीजों से बद्धमति समाप्त होने लगती है।

बद्ध जीव जिस क्रम से भाव को प्राप्त करते हैं

दुनियावी भावों से ग्रसित बद्ध जीव अपने सिद्ध स्वरूप को भूलकर दुनियावी अभिमान के द्वारा अपने जड़ शरीर मे ही मत्त रहता है। ऐसे समय मे श्रीकृष्ण लीला श्रवण कर उसके हृदय में शुद्ध धन पाने का लोभ जाग्रत होता है।इसी लोभ में वह सदा भाव तत्व का स्मरण करता रहता है । साधक द्वारा जब अपने भावों का स्मरण बढ़ता जाता है , उतना ही भृम दूर होता जाता है।

स्मरण दशा

स्मरण भी वैधी तथा रागानुगा दो प्रकार का होता है। रागानुगा स्मरण तो शास्त्र की पद्धति से परे है। केवल श्रीकृष्ण के माधुर्य से आकृष्ट होकर साधक भगवान का स्मरण करता है और जल्दी ही अपने भाव के अनुसार आपन दशा को प्राप्त कर लेता है।

विधि मार्ग में भक्त की उन्नति के क्रम

विधि मार्ग के जो भक्त हैं , स्मरण के समय शास्त्र की अनुकूल युक्तियों का विचार करते हैं परंतु जब भाव का आविर्भाव होता है तो वह शास्त्र युक्तियों को झंझट समझकर छोड़ देते हैं ।

श्रद्धा , रुचि , आसक्ति आदि के क्रम से जो भाव हैं , वह ही आपन दशा के समय आविर्भूत होते हैं।

आपन दशा में रागानुगा और विधि मार्ग के भक्तों में कोई भेद नहीं है

स्मृति और वेदों के मत के अनुसार आपन दशा में रागानुगा भक्त और विधि मार्ग पर चलने वाले भक्त में कोई भेद नहीं होता है।

पांच प्रकार के स्मरण

स्मरण, धारणा, ध्यान, अनुस्मृति और समाधि इस प्रकार स्मरण पाँच प्रकार हैं।

भावपन्न दशा के उदय का समय

जब समाधि में स्वरूप स्मृति होती है , तब साधक के अंदर भाव की आपन दशा प्रकट होती है।

आपन भाव की दशा में जैसी अवस्था होती है

उस समय अपने सिद्ध देह के अभिमान में स्थित होने के कारण जड़ देह का अभिमान नष्ट हो जाता है। तब वह अपने सिद्ध स्वरूप में सदा ही ब्रजवास करता है तथा इस दशा में अपने स्वरूप के द्वारा वृन्दावन का दर्शन करता है।

आपन अवस्था मे स्वरूप सिद्धि होती है

आपन दशा में भाग्यवान व्यक्ति भजन करते करते स्वरूप सिद्धि को प्राप्त करता है। इसी अवस्था मे सबसे बड़ा कार्य यह होता है कि भगवान की इच्छा से उसकी सूक्ष्म देह नष्ट हो जाती है।

साधन सिद्धि का फल

इसी अवस्था मे साधन सिद्ध होकर वह नित्य सिद्ध भक्तों के साथ समता प्राप्त करके निरन्तर श्रीकृष्ण की सेवा करता है।

संक्षेप में क्रम परिचय

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी कहते हैं कि भक्ति उन्मुख व्यक्ति को चाहिए कि वह साधु सँग में क्रम को तोड़े बगैर एकांत में निष्कपट भाव से हरिनाम करता रहे । ऐसा करने से थोड़े ही समय मे उसे सर्वसिद्धि की प्राप्ति हो जाएगी । हाँ, कुसंग को छोड़कर साधु सँग में रहने से ही यह फल प्राप्त होता है।

नाम का पूर्ण फल प्राप्त करने के लिए तीन उपाय

साधु सँग, सुनिर्जन स्थान तथा अपना दृढ़ भाव -इन तीनों के प्रभाव से साधक सिद्धि को प्राप्त कर लेता है।नामाचार्य

श्रीहरिदास ठाकुर जी अपनी स्वाभाविक दीनता के साथ कहते हैं कि हे गौरांग महाप्रभु जी! मेरी प्रार्थना है कि मैं तो दीन हीन हूँ , मेरी तो समझ भी कम है , क्या बताऊँ मेरा मन तो सदा ही सांसारिक विषयों में लगा रहता है । हे गौरहरि! मैं तो साधु सँग से रहित हूँ , श्रीकृष्ण का भजन न करने के कारण आत्मचोर हूँ । आप अपनी अहैतुकी कृपा मुझपर करें ताकि भक्ति रस में मेरी मति हो जाये , इतनी तो कृपा अवश्य करो।

इतना कहते ही हरिदास ठाकुर जी प्रेम विभोर होकर मूर्छित हो गए और उन्हें अपनी देह महाप्रभु जी के चरण कमलों में अर्पित कर दी। महाप्रभु जी ने भी प्रेम में गदगद होकर उन्हें उठाया, गाढ़ आलिंगन दिया तथा बहुत सारी मन की बातें की।

महाप्रभु जी की आज्ञा

श्रीमन महाप्रभु जी बोले -हे हरिदास! मेरी लीला के संगोपन के बाद जिस समय दुष्ट प्रकृति के लोग संसार को अंधकार से भर देंगे , उस समय आपके यह उपदेश उस समय के लोगों को मार्ग दिखाएंगे। नामाश्रय करके निष्किंचन व्यक्ति इस तत्व के द्वारा एकांत में बैठकर श्रीकृष्ण का भजन करेंगे। अपने अपने भाग्य के बल से जीव भक्ति को प्राप्त करता है , भगवान की भक्ति को प्राप्त करने की शक्ति सबकी नहीं है। सुकृतिवान व्यक्तियों

की भक्ति में दृढ़ता हो , इसलिए मैं युग धर्म नाम संकीर्तन का प्रचार करने के लिए इस धरातल पर आया हूँ।

हरिदास ठाकुर जी का नाम प्रचार में सहयोग

भगवान श्री महाप्रभु जी नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर जी को कहते हैं कि आप मेरे नाम प्रचार रूपी इस कार्य के सहयोगी हो इसलिए मैंने आपके मुख से नाम तत्व का श्रवण किया है।

भगवान श्रीकृष्ण की कृपा के बल से तमाम अमृत की खान स्वरूप इस हरिनाम चिन्तामणि को जिसने प्राप्त किया है , वह महापुरष ही कृतार्थ है तथा वह ही सदा पूर्णानन्द में मग्न होकर राग मार्ग से श्रीकृष्ण का भजन करता है। अन्त में दीनता के मूल स्रोत्र व दीनता के शिक्षक भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु जी कहते हैं कि हे हरिदास ! आप मुझ जैसे दीन हीन, अकिंचन को इस अमृत रस का लेश मात्र पिला कर मेरे आनन्द की वृद्धि कीजिये।

ग्रंथ लेखन विश्राम।

जय निताई जय गौर